।।રામ।।

।। रामकथा ।।

मोरारि बापू

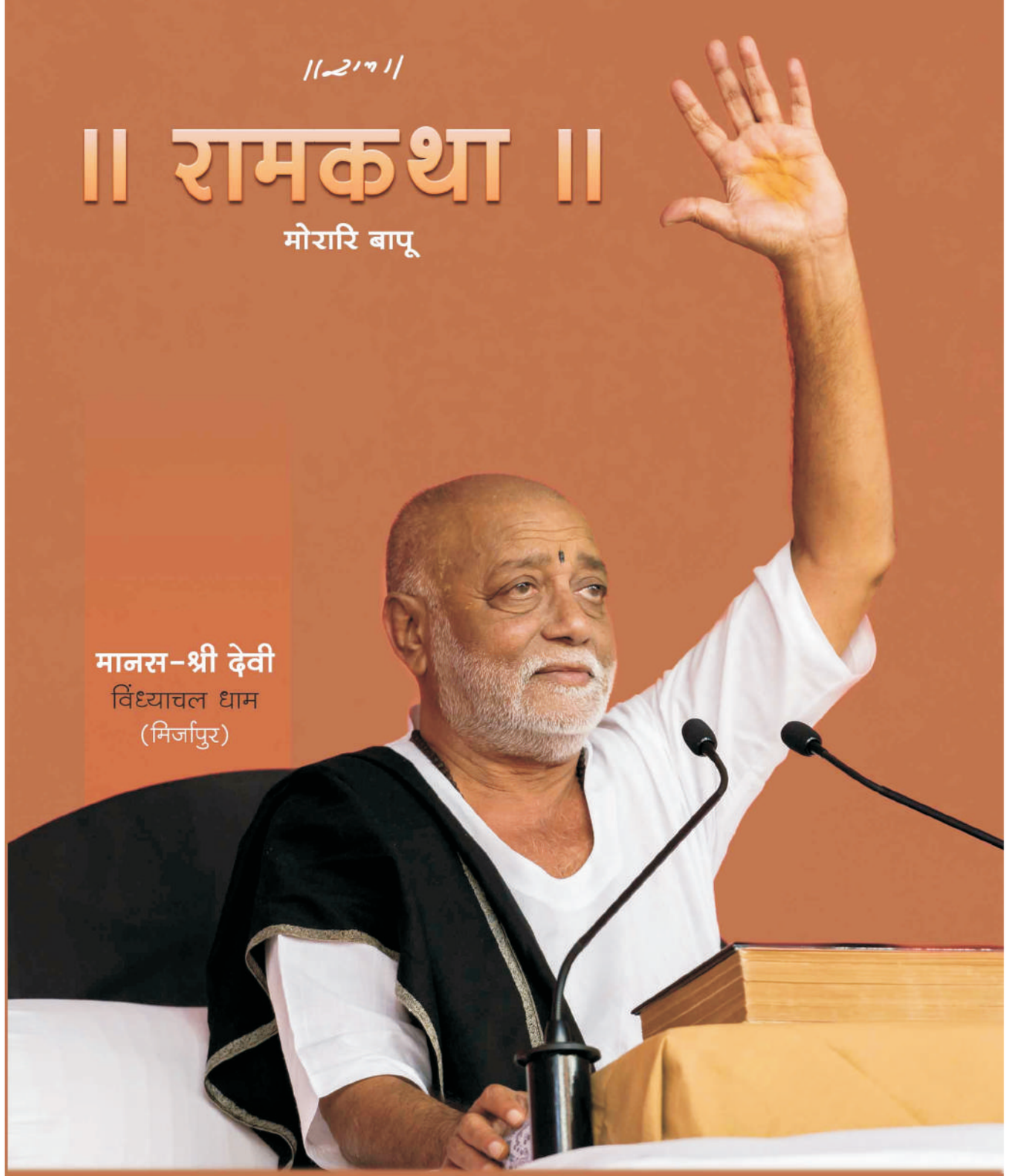

मानस-श्री देवी

विंध्याचल धाम

(मिर्जापुर)

उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।।

ब्रह्मचारिणी
शैलपुत्री
कालरात्रि
स्कन्दमाता
सिद्धिदात्री
कात्यायनी
चन्द्रघण्टा
महागौरी
कूष्माण्डा

|| **रामकथा** ||
मानस-श्रीदेवी

मोरारिबापू
विंध्याचल धाम (मिर्जापुर)
दिनांक : २१-९-२०१७ से २९-९-२०१७
कथा-क्रमांक : ८१८

प्रकाशन :
जनवरी, २०२२

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू ने पराम्बा विंध्यवासिनी के पवित्र विंध्याचल धाम (मिर्जापुर) में दिनांक २१-९-२०१७ से २९-९-२०१७ के दिनों में रामकथा का गान किया। नवरात्रि-पर्व में गाई गई इस रामकथा 'मानस-श्री देवी' विषय पर केन्द्रित हुई।

नवरात्रि के दिनों को 'मधर्स-डे' के रूप में रेखांकित करते हुए बापू ने कहा कि यदि एक भारतीय के नाते, ऋषि-मुनियों के वंशज के नाते, इस सनातन परम पावनी परंपरा के अंश के नाते हमें निर्णय करना है तो मैं कहता हूं, भारतीयों का 'मधर्स-डे' तो नवरात्रि ही हो सकता है। हमारे ही क्या, पूरे विश्व का 'मधर्स-डे' नवरात्रि ही होना चाहिए और 'फाधर्स-डे' शिवरात्रि ही होना चाहिए। तो ये हमारा 'मधर्स-डे' है। इस 'मधर्स-डे' में माँ के चरणों में कथा का अवसर मिला इससे बड़ा सद्‌भाग्य क्या हो सकता है?

बापू ने 'भगवद्‌गोमंडल' में दिये गये 'श्री' शब्द के ऐश्वर्य, आबादी, उन्नति, वैभव, कमल, कांति, शोभा, सौन्दर्य, कीर्ति, प्रतिष्ठा आदि कई अर्थ भी प्रस्तुत किये। तदुपरांत बापू ने शास्त्रोक्त महाविद्याओं का ज़िक्र किया और साथ ही 'मानस' में जो दस महाविद्या है उनका भी परिचय दिया।

विश्व की प्रत्येक स्त्री में मातृरूप का दर्शन करने का अनुरोध करते हुए बापू ने कहा कि हम विंध्यवासिनी में माँ का दर्शन करें, काली खोह में माँ का दर्शन करें अथवा तो जितनी शक्तिपीठ है उसमें बिराजित माँ का दर्शन करें लेकिन साथ-साथ विश्व की तमाम स्त्रियां माँ के ही रूप है, ये यदि हम भूल गये तो शक्तिपीठों से शक्ति तो मिलेगी, शांति नहीं मिलेगी; तामसता तो मिलेगी, सात्त्विकता प्राप्त नहीं होगी; क्योंकि प्रत्येक स्त्री में माँ ही बिराजमान है।

सांप्रत देश-काल के संदर्भ में बापू ने माँ के सौम्य रूप की हिमायत की और कहा कि विश्व को अब ऐसी माँ की ज़रूरत है जो वात्सल्यमूर्ति हो, शांतिमूर्ति हो, सुंदर रूप हो। मैंने तो मेरे तलगाजरडा के मंदिर में रामजी के हाथ से धनुषबाण ले लिये हैं और हनुमानजी के हाथ से गदा भी ले ली है। जगत में ये जो हिंसा का वातावरण है, आतंकवाद का वातावरण है इससे अब जगत बाहर निकले; हमारे देवस्थान इससे मुक्त हो ये ज़रूरी है। 'बलि केवल उग्ररूपा देवी को ही चढ़ाया जाता है, सौम्य देवी को नहीं।' ऐसे निवेदन के साथ बापू का कहना हुआ कि अब ये आउट ओफ डेइट है। अब इसमें संशोधन होना चाहिए; इससे समाज बाहर आना चाहिए।

नवरात्रि के पवित्र एवं अनुष्ठानी दिनों में 'मानस-श्री देवी' रामकथा के माध्यम से मोरारि बापू ने यूं माँ के चरणों अपनी वाणी के पुष्प अर्पण किये।

– नीतिन वडगामा

साधना शक्ति के बिना, शांति के बिना और भक्ति के बिना नहीं हो सकती

उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।।

बाप! पराम्बा विंध्यवासिनी के इस पवित्र विंध्याचल धाम में नौ दिन के लिए रामकथा का आरम्भ हो रहा है और वो भी माँ की साधना के नवरात्रि पर्व में हो रहा है। मैं समझता हूं कि केवल, केवल और केवल माँ की अहेतु कृपा का ये परिणाम है। मैंने दो-तीन बार कहा कि यदि एक भारतीय के नाते; ऋषि-मुनियों के वंशज के नाते; इस सनातन परम पावनी परंपरा के एक अंश के नाते हम सब जो है, हमें यदि इसका निर्णय करना है तो मैं कहता हूं, भारतीयों का मधर्स डे तो नवरात्रि ही हो सकता है। हमारे ही क्या, पूरे विश्व का मधर्स डे नवरात्रि ही होना चाहिए और फाधर्स डे शिवरात्रि ही होना चाहिए। कवि कालिदास ने कहा, 'जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरः।' मेरे 'मानस'कार ने भी गाया, 'जगत मातु पितु संभु भवानी।' हे पराम्बा, हे विंध्यवासिनी, हे त्रिपुर सुंदरी, हे पराम्बा, तू ही तो हमारी माँ है और हमारा पिता शिव है। भाई दूज हमारा ब्रधर्स डे होना चाहिए। रक्षाबंधन हमारा सिस्टर्स डे होना चाहिए। कहां हम पाश्यात्य! सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, अद्‌भुत तत्त्वदर्शी महापुरुष; हमारे देश का सद्‌भाग्य कि हमारे देश के एक बार के राष्ट्रपति भी रहे। उसके नाम से ५ सितम्बर को हम टीचर्स डे भी मनाते हैं। ये तो बहुत अद्‌भुत है। लेकिन हमारा सद्‌गुरु डे तो गुरुपूर्णिमा ही हो सकता है न? हमारा गुरु का, जो आध्यात्मिक जगत का जो गुरु है वो तो; तो मुझे लगता है कि अब एक नया कलेंडर बनना चाहिए। जिसको अगर कट्टरता छोड़े, पूर्वग्रह की ग्रंथियां छोड़े तो पूरा विश्व उसका अनुसरण कर सकता है।

तो ये हमारा मधर्स डे है। इस मधर्स डे में कथा का माँ के चरणों में अवसर मिला इससे बड़ा सद्‌भाग्य क्या हो सकता है? अच्छा किया कि माँ काली का शांत स्वरूप विराजमान है। ये अच्छा है। माँ तो पहले से ही शांत है। ये तो उसकी करुणा को चोट लगी कि हाय! मेरे पैर के नीचे कौन आ गया? और जबान निकल गई। और हमने उसका क्या से क्या बना दिया! एक विभीषिका रूप दे दिया उसका, भयावह! तो ये मुझे अच्छा लगा कि शांत स्वरूप है। मैं दुनियाभर में कहता हूं कि हनुमानजी गदा लेकर खड़े हैं; मुंह में क्रोध है; मारो-काटो की मुद्रा में हनुमान है, ऐसे हनुमान आज प्रासंगिक नहीं है। आज हनुमान ध्यानस्थ मुद्रा में हो वो प्रासंगिक है। शांत हो। और मैं कई बार बोला हूं। माँ के आशीर्वाद से यहां भी कहना चाहिए कि आओ, हम सब मिलकर, जन-जन मिलकर, पुरोहित समाज हम-आप सभी मिलकर, छोटे-बड़े सभी मिलकर माँ की कृपा से वो समय अब हमारी प्रतीक्षा कर रहा है; समय की मांग है कि एक माँ का ऐसा रूप स्थापित करें कि 'या देवी सर्वभूतेषु अहिंसारूपेण संस्थिता।' वो कृपारूपेण, शक्तिरूपेण, श्रद्धारूपेण, भक्तिरूपेण, कई रूपेण ये तो परम ऊर्जा है। लेकिन अब विश्व को ज़रूरत है 'या देवी सर्वभूतेषु अहिंसारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।' विश्व राह देख रहा है और हम सब ये करें। शांत मुद्रा माँ की सुनी मुझे बहुत अच्छा लगा। और माँ तो कितनी करुणा मूर्ति है! जगद्‌गुरु शंकर नतमस्तक कहते हैं-

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।।

तो आओ, हम सब मिलकर, सब भारतीय मिलकर, सब पीठ मिलकर, सब धर्मजगत मिलकर, सब साधनापद्धति मिलकर, सब आचार्य, धर्माचार्य और जन-जन एक साथ मिलकर माँ के चरणों से आशीर्वाद प्राप्त करें कि माँ, अब हम एक ऐसा स्वरूप जगत में स्थापित करें जो 'अहिंसारूपेण संस्थिता' हो। क्योंकि माँ का शांत स्वरूप यहां विराजमान है। कितना अच्छा लगा कि महामाया के रूप में कृष्ण को राखी बांध रही है! तो मुझे अच्छा लगा; इस बहाने यहां नौ दिन रहना होगा माँ के चरणों में, माँ की कृपा छाया में।

तो बाप! मैं सोच रहा था कि नवरात्र है, माँ का धाम है, 'मानस' से कौन एक विचार को केन्द्र में रखकर मैं कथा गाऊं? पहले से एक निर्णय था, तो इस नौ दिवसीय कथा का केन्द्र होगा 'मानस-श्री देवी।' 'रामचरितमानस' में वैसे और राम के आगे 'श्री' लग जाये, दूसरे सन्दर्भ में तो बहुत बार 'श्री' शब्द आया। लेकिन 'रामचरितमानस' में स्वतन्त्र रूपेण 'श्री' शब्द करीब मेरी गिनती ठीक हो या तो जो भूल-चूक हो, बीस बार 'श्री' शब्द और 'देवी' शब्द करीब-करीब अठारह बार आया है। तो मैंने दोनों को मिलाकर सब्जेक्ट निर्णय किया 'मानस-श्री देवी।' और इसलिए इस कथा में एक माँ विराजित होगी बीच में क्योंकि हमारी रामकथा ही माँ से शुरू होती है। सिद्ध हमें होना नहीं है। माँ, हमें विषयी से ऊपर उठाओ। और जैसे कहा गया न कि एक ओर बाबा भोलेनाथ विश्वनाथ बैठा है और एक ओर तीर्थराज प्रयाग और माँ बीच में विराजमान है।

उभय बीच श्री सोहइ कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।

तो रामकथा शक्तिरूपा है। तुलसी ने रामकथा के बारे में कहा कि 'तात मात सब बिधि तुलसी की।' तो 'साधक' शब्द का प्रयोग हो रहा था। साधक वो है जो साधना करता हो। मेरा अर्थ तो बहुत सीधासादा है; मैं उसको साधक मानता हूं जो किसी के जीवन में बाधक न बने वो साधक। चाहे भजन करता हो, माला करता हो, यज्ञ करता हो, जप-तप करता हो, न करता हो मुबारक। लेकिन किसी के जीवन में जो बाधक न बने वो ही मेरी दृष्टि में साधक है। हमारा 'मानस' कहता है-

बिषई साधक सिद्ध सयाने।
त्रिबिध जीव जग बेद बखाने।।

तो साधना करे वो साधक। तो साधना शक्ति के बिना नहीं हो सकती; शांति के बिना नहीं हो सकती और भक्ति के बिना नहीं हो सकती। आप लाख साधना करो, आपके मन में भाव न हो, भक्ति न हो तो आप साधना में केवल एक क्रियाकांड मात्र कर रहे हैं। साधना करनी है तो भक्ति चाहिए। साधना करनी है तो शक्ति भी चाहिए। हमारा शरीर रुग्ण है, बीमार है, अवस्था हो गई है, बहुत इच्छा है लेकिन शक्ति चाहिए इतने घंटे बैठने की या तो जो जैसी साधना। उसमें जो नियम-व्रत लगते हैं। उसमें शक्ति भी चाहिए। और अशांत परिस्थिति में साधना कैसे करोगे? शांति भी तो चाहिए। और शांति, भक्ति और शक्ति ये माँ के ही तो रूप हैं। तो कोई भी साधना; कोई भी कथा के गायक कथा का गायन करेगा तो उसको भी शक्ति चाहिए, शांति चाहिए और भक्ति चाहिए। कोई भी श्रोता कथा का श्रवण करे, आयोजक आयोजन करे तो उसमें शक्ति चाहिए, शांति चाहिए, भक्ति चाहिए। और वाल्मीकिजी ने तो कहा कि सीता का चरित्र ही महत् है। 'रामचरितमानस' में सीता का जो चरित्र प्रस्तुत किया गया कभी वो भक्ति के रूप में प्रस्तुत किया, कभी माया के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया। कभी शंकराचार्य की बोली में कहूं तो 'सीता शान्ति समाहितः।' शांति के रूप में प्रस्तुत किया गया। शक्ति के रूप में, आदिशक्ति के रूप में उसको प्रस्थापित किया। तो ये पूरा जगत शक्ति से संचालित है।

तो 'रामचरितमानस' की कथा शुरू होती है तो पहले शक्ति की ही वंदना 'वन्दे वाणीविनायकौं।' वाणी-सरस्वती की वंदना से कथा शुरू होती है। जो महासरस्वती, महाकाली, महालक्ष्मी की स्थापना। 'रामचरितमानस' का आरंभ होता है महासरस्वती की वंदना से-

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

ये है महासरस्वती। फिर महाकाली कौन है? दूसरे ही मन्त्र में-

भवानीशंङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।

और महालक्ष्मी कौन है?

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारीणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ।।

तो सीता ये महालक्ष्मी; भवानी ये महाकाली और वाणी ये महासरस्वती। जो माँ के मूल रूप हैं। महालक्ष्मी, महाकाली, महासरस्वती। तो 'मानस' का आरंभ ही महाशक्ति की वंदना से हो रहा है। ये सनातन सत्य है।

तो मेरे भाई-बहन, इस कथा का मूल सब्जेक्ट रहेगा 'मानस-श्री देवी।'। क्रम में नहीं चलेंगे। माँ की करुणा क्रम में नहीं होती है। गणित के मुताबिक माँ करुणा नहीं करती। वो तो अगणितीय होती है। इसलिए चौपाई जो सहज चली गई उसमें क्रम नहीं। 'श्री' शब्द मुझे जहां से लेना था वो 'अयोध्याकांड' की पंक्ति है। और 'देबी पूजि पद कमल तुम्हारे।' ये 'बालकांड' की पंक्ति है। तो क्रम नहीं होगा। कृपा में क्रम नहीं होता। कृपा में कौन-सा क्रम है? तो पहले 'अयोध्याकांड' की पंक्ति उसके बाद फिर 'बालकांड' की पंक्ति। दोनों पंक्ति मिला करके 'मानस-श्री देवी' की हम भूमिका बना रहे हैं।

तो ये 'मानस-श्री देवी।' तो माँ केन्द्र में रहेगी। तत्त्वतः माँ ही तो केन्द्र में है ओर कौन है? इसलिए तैत्तरीय उपनिषद विश्व में योग्य न्याय देते हुए सबसे पहले 'मातृदेवो भव।' कह कर पुकारा। तो बाप! इस मूल विचार को केन्द्र में रखते हुए हम माँ दुर्गा की वाणी से पूजा करेंगे ये। वाङ्मय पूजामात्र है माँ की, ओर क्या है? पवित्र दिन हैं। और मैं तो हर वक्त कहता हूं इसलिए कहूं कि आप जो बाहर से आये हैं; जो अपनी-अपनी साधना करें सो मुबारक। लेकिन कुछ न आता हो तो ये नौ दिन 'रामचरितमानस' का पाठ करना। ये शक्ति है; ये दुर्गा है। तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' में लिखा है; जब कहा कि राम कौन है? जब ऐसा प्रश्न उठा कि राम है कौन? ब्रह्म तो न स्त्रीलिंग है, न पुलिंग है। उपनिषद में तो ब्रह्म नान्यतर जाति मैं है। तो तत्त्वतः माता-पिता, पिता-माता जो भी कहो एक ही हैं। लेकिन एक ही ब्रह्म लीला क्षेत्र में उसी ब्रह्म ने नारी का रूप लिया वो जगदम्बा जानकी है। नर का रूप लिया वो भगवान राम है।

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बन्दउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।।

तो तत्त्वतः तो एक हैं; ब्रह्म तत्त्व है। मेरे कहने का मतलब ये ('मानस')भी माँ ही तो है। अनेक रूप रूपाय। ये शक्ति स्वरूपा है। तो 'रामचरितमानस' क्या है? 'सकल लोक जग पाविन गंगा।' उनके नायक राम कौन है? तो 'रामचरितमानस' में उसका जवाब है, 'दुर्गा कोटि।' राम मानी करोडों दुर्गा। मैं नहीं कहता; मेरे बाबाजी कहते हैं, 'दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दनी।' तो मूल में तो पराम्बा शक्ति पड़ी है साहब!

पहले दिन की कथा में सदैव एक नियम-सा बन गया है। एक प्रवाही परंपरा चल रही है कि वक्ता को चाहिए कि जिस शास्त्र की कथा वो कहेगा उसकी महिमा समझाई जाए। तो पहला दिन उसकी महिमा का गायन क्योंकि माहात्म्य ज्ञान होना बहुत ज़रूरी है। और उसको भी ओर सरल करूं तो सद्ग्रंथ का परिचय कराना श्रोताओं को कि कौन सद्ग्रंथ लेकर हम नौ दिन बैठेंगे? कम से कम सद्ग्रंथ का परिचय तो होना चाहिए। और मुझे आपको 'रामायण' का परिचय क्या देना? फिर भी वाणी को पवित्र करने के लिए कहूं। आदि कवि वाल्मीकिजी ने 'रामायण' लिखी। भगवान शिव ने जिसकी रचना की है वो है 'रामचरितमानस।' इसलिए हमारे साकेतवासी पंडित रामकिंकरजी महाराज कहा करते थे कि वाल्मीकि आदि कवि है 'रामायण' के और जगत के वाङ्मय के लेकिन भगवान शिव अनादि कवि है। ये अनादि कवि है जिन्हों ने 'रामचरितमानस' की रचना करके हृदय में रखी और फिर समय आने पर जगदम्बा पार्वती के सामने उसका गायन किया। ये पूरी प्रवाही परंपरा।

परंपरा हंमेशा प्रवाही ही होनी चाहिए। जो परंपरा जड़ बन जाए वो घातक है; हिंसक है; विघटनवादी है। जो परंपरा जड़ हो जाती है ये संस्कृति का कलेवर फाड़ देती है। परंपरा प्रवाही होनी चाहिए गंगा की तरह। कुछ वस्तु जो आज के विश्व के लिए अनुरूप न हो उसका संशोधन हो। मूल को न तोड़े, प्लीज़। हमारा मूल वेद है। हमारी सनातन संस्कृति ये हमारा मूल है। मूल को न तोड़े लेकिन मूल को सलामत रखते हुए हमें रोज़ नए-नए फूल खिलाने चाहिए। ये होना चाहिए। इसलिए शास्त्र

रोज़ नये हैं। शास्त्र की चर्चा 'स्वादु स्वादु पदे पदे दिने दिने नवं नवं।' 'मानस' में जाऊं तो 'प्रतिक्षण वर्धमानम्' जो नारद का भक्तिसूत्र है। तो ये होना चाहिए साहब! शंकर भगवान ने कहा पार्वतीजी को हे भवानी-

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा।
सकल लोक जग पावनि गंगा।।

समस्त लोक को पावन करनेवाली ये गंगा है। तो परंपरा प्रवाही रहनी चाहिए। जो जड़ हो जाये वो विघटन करती है। घातक है; हिंसक है; आक्रमक है। तो वेद-शास्त्र के मूल को पकड़े हुए समकालीन समय को वास्तविकता को देखकर। क्योंकि हर एक काल का धर्म बिलग होता है; हर एक काल की मानिसकता बिलग होती है। आप 'मानस' में पढ़े कि सतजुग की मानसिकता बिलग है, त्रेता की बिलग है, द्वापर की बिलग है, कलियुग की बिलग है।

तो भगवान शंकर अनादि देव, अनादि कवि है जिसने 'रामचरितमानस' की रचना की और उसका सृजन और संवाद किया। कोई भी प्रसंग विवाद का तुलसी ने नहीं उठाया। चारों चार घाट संवाद के रचे। ज्ञानघाट जहां शंकर और पार्वती संवाद कर रहे। एक कर्मघाट जहां याज्ञवल्क्य महाराज और भरद्वाजजी संवाद कर रहे। एक उपासनाघाट जहां बाबा कागभुशुंडि और खगपति गरुड़ संवाद कर रहे हैं और एक तुलसी का दीनता का, शरणागति का, प्रपन्नता का घाट जहां तुलसी अपने मन से संवाद करते हैं या तो संतसभा में संवाद करते हैं। वाल्मीकि ने 'कांड' नाम दिया। 'बालकांड', 'अयोध्याकांड' ये वाल्मीकि की उद्घोषणा है। तुलसी ने 'कांड' शब्द का प्रयोग नहीं किया। यद्यपि हम अभ्यस्त हो गये हैं वाल्मीकि के शब्दों से इसलिए हम भी कहते हैं, प्रथम सोपान 'बालकांड।' बाकी तुलसी ने तो 'सोपान' शब्द किया। ये सीढ़ी है सप्तसोपान। 'रामचरितमानस' का सद्ग्रंथ रूप जो है इसमें सात सोपान हैं- बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका और उत्तर।

तो प्रथम सोपान 'बालकांड'; गोस्वामीजी ने अद्भुत अलौकिक अनुभूत सात संस्कृत मंत्रों में प्रथम सोपान का मंगलाचरण किया।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।
भवानीशंङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा: स्वान्त:स्थमीश्वरम् ।।

पहले मंत्र में वाणीविनायक की वंदना। दूसरे मंत्र में भवानी-शंकर की वंदना। तीसरे मंत्र में त्रिभुवन गुरु भगवान महादेव की स्वतंत्र वंदना। चौथे मंत्र में माँ जानकी और राघवेन्द्र की वंदना। उसका स्मरण करके उसके पुण्यारण्य में विहार करनेवाले कवीश्वर वाल्मीकि और कपीश्वर हनुमानजी की वंदना। परमात्मा राम की स्वतंत्र वंदना की और करते-करते आखिर में अपने सद्ग्रंथ का विशुद्ध हेतु बता दिया।

तुलसी ने अपने ग्रंथ के तीन हेतु बताये। एक तो स्वान्त: सुख के लिए मैं कर रहा हूं। दूसरा हेतु बताया, मेरे मन को बोध हो। और तीसरी बात, मेरी वाणी को पवित्र करने के लिए मैं राम की कथा गा रहा हूं। तुलसी संस्कृत में सात मंत्रों का अद्भुत स्थापन करके बिलकुल देहाती बोली में, ग्राम्यगिरा में रामकथा को गा रहे हैं। श्लोक को लोक तक पहुंचाना था। श्लोकरूपी गंगा को लोक तक पहुंचाने का एक भगीरथ कार्य गोस्वामी तुलसी ने किया। ये ज़रूरी है। तुलसीने कहा, ये पंडितों को तो विराम और विश्राम देती ही है रामकथा। लेकिन सामान्य लोगों को मनोरंजन होना चाहिए। उसके दिल तक बात पहुंचनी चाहिए। इसलिए पहुंचे हुए जो बुद्धपुरुष हमारे देश में आये; व्यवस्था के रूप में अस्तित्व के आदेश से जो आये इन सभी महापुरुष ने ये परम विद्या के जानकार होते हुए सभी लोकबोली में उतर आये, लोक तक उतर आये, लोक तक गये। पूरी काशी नगरी संस्कृत की नगरी, उसमें बिलकुल लोक बोली में कबीर आये। ढाई हज़ार साल पहले तथागत बुद्ध आये; बिलकुल उस काल की बोली में अपना पूरा चिंतन पेश किया। मेरे गोस्वामीजी ने भी लोकबोली में इस शास्त्र की रचना की। कितने भोजपुरी के शब्द, अवधी भाषा के शब्द, दुनियाभर के शब्द मेरे गोस्वामीजी ने 'मानस' में लिये। एक बहुत बड़ा एन्साइक्लोपीडिया है; 'रामचरितमानस' विश्व का शब्दकोश है। जो खोजी होता है सब उसमें से अपनी भाषा खोज लेता है। श्लोक को लोक तक उतारने के लिए तुलसीजी संस्कृत को दंडवत् करते हुए, उसको बहुत आदर देते हुए 'मानस' का आगे का वर्णन करते हैं तब बिलकुल पांच सोरठें देहाती भाषा में लिख देते हैं।

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन।।

पहले चार सोरठे में पंचदेवों की स्मृति की। मेरी व्यासपीठ हर वक्त कहती रहती है कि भगवान जगद्गुरु आदि शंकराचार्य ने हमें सनातन धर्मावलंबियों को पंचदेव की उपासना सिखाई कि सनातन धर्मावलंबियों को गणेश, सूर्य, विष्णु, दुर्गा और महादेव की उपासना करनी चाहिए। अब मैं ये कहता रहता हूं कि ग्रंथ है वैष्णव। ये वैष्णव ग्रंथ माना जाता है। यद्यपि 'रामायण' को कोई सीमा नहीं है। 'रामायण सत कोटि अपारा।' 'रामायण' कोई सीमा में आबद्ध नहीं हो सकती। तुलसी स्वयं एक परंपरा के नियम से देखें तो वैष्णवी परंपरा में आये; रामानुजी परंपरा में वो आये। और जगद्गुरु शंकराचार्य ये पूरी शांकरी परंपरा। तो शांकरी परंपरा के सिद्धांतों को तुलसी ने अपने 'रामचरितमानस' में पहले स्थापित करके हरि-हर का समन्वय कर दिया; एक सेतुबंध कर दिया। कौन शैव? कौन वैष्णव? इसलिए मेरी व्यासपीठ कहती रहती है कि भगवान शिव कथा कहते हैं; शैव संप्रदाय। और कथा सुनती है भवानी मानी शक्ति। भवानी, शाक्त कथा सुन रहा है। कथा शिव कह रहे हैं; कथा सुन रही है शाक्त। कथा राम की। कथा मूल वैष्णवी कथा। तो शाक्त, शैव, वैष्णव ये सबके त्रिवेणी संगम का नाम है 'रामचरितमानस।' कितना बड़ा क्रांतिकारी काम किया तुलसी ने! तुलसी रामकथा आरंभ करने से पहले शिव स्थापना करते हैं। और भगवान राम रावण का निर्वाण करने के लिए सेतु बना उसके बाद राम भी पहले रामेश्वर की स्थापना करते हैं। ये है सेतु। और हम छोटे-बड़े संप्रदायों के नाम से एक-दूसरे से बिलग होते जा रहे हैं! एक-दूसरे को काटे जा रहे हैं!

मेरे देश के युवान भाई-बहन, हमें सूर्य की पूजा करनी चाहिए। आप पढ़ो; काम करो; डिग्री प्राप्त करो; जगत को मर्यादा से एन्जोय करो। मेरी व्यासपीठ आपको जरा भी प्रतिबंध नहीं लाद रही। लेकिन सूर्य उपासना न भूले। हमारे देश की ये परंपरा सूर्यवंदना। हमारे देश की परंपरा गणेश की वंदना। हमारे देश की परंपरा दुर्गापूजा। हमारे देश की परंपरा भगवान विष्णु की पूजा। हमारे देश की परंपरा भगवान महादेव का अभिषेक। ये पंचदेव। मैं कहता रहता हूं कि संशोधन होना चाहिए। जड़ न बने;

मूल को पकड़े रहे। युवानों को मैं कहता हूं कि गणेश है विवेक का देवता। जीवन विवेक से जीयो ये प्रतिपल गणेशपूजा है। गणेश पूजा करो रूबरू में गणेश के मंत्रों से ये तो अद्‌भुत है। लेकिन ये हमें न आये; इतना समय नहीं, तो विवेक में जीना गणेशपूजा है तात्त्विक अर्थ में। सूर्यनमस्कार आप न कर सको, कोई चिंता नहीं। लेकिन संकल्प करो, हम उजाले में जीयेंगे, प्रकाश में जीयेंगे। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' ये हमारी औपनिषदीय परंपरा है। रोज़ शंकर का हम अभिषेक न कर सके लेकिन शिव मानी कल्याण। दूसरे के कल्याण की समझ रखना ये रोज़ रुद्राभिषेक है। रुद्राभिषेक करना चाहिए स्थूल रूप में। लेकिन तात्त्विक रूप में हम सबके शुभ की सोचें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' और दुर्गापूजा का अर्थ है श्रद्धा। कोई हमारी श्रद्धा को खंडित न कर दे उसका ध्यान रखना। अश्रद्धा नहीं होनी चाहिए और अंधश्रद्धा भी नहीं होनी चाहिए। लेकिन मौलिक श्रद्धा तो होनी ही चाहिए। और विष्णु की पूजा रोज करो, बहुत अच्छी है। लेकिन न कर पाओ तो विष्णु का एक अर्थ होता है विशालता, व्यापकता। विचार विशाल रखें; दृष्टिकोण विशाल रखें। कूपमंडूक न बने। संकीर्णता हमारे हृदय में न आने दे ये है विष्णुपूजा। पंचदेवों की स्थापना की तुलसी ने। और यदि पांचों की पूजा न कर सको तो तुलसी कहते हैं, एक ऐसा तत्त्व है हमारी परंपरा में जिसमें पांचों आ जाते हैं। वो है गुरुमंत्र। गुरु गौरी भी है; गुरु गौरीशंकर भी है; गुरु विष्णु भी है; गुरु गणेश भी है और गुरु सूर्य भी है। एक बुद्धपुरुष के आश्रय में बैठना पांचों देव की पूजा है। इसलिए तो गंधर्वराज पुष्पदंत अपने 'महिम्नस्तोत्र' में कहता है, 'नास्ति तत्त्वं गुरौ परम्।' गुरु से परम तत्त्व कोई नहीं है।

गुरुवंदना की है। गुरु बहुत आवश्यक परमतत्त्व है। आजकल बौद्धिक लोग ऐसा कहते हैं, गुरु की क्या ज़रूरत है? डायरेक्ट क्यों न जाए? अब इन बाल पंडितों को क्या कहे यार! हमारा देश गुरु के श्रू ही गया है जहां गया है। चाहिए कोई बुद्धपुरुष। कोई ऐसा बुद्धपुरुष जिसका आश्रय हम पूर्णतया करें तो भी वो हमें कभी परतंत्र न होने दे; स्वाधीन छोड़ दे। तो ऐसे गुरु की वंदना नितांत आवश्यक है। मैं इस प्रकरण को 'मानस-गुरुगीता' कहता हूं। कुछ पंक्ति-

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

गुरु चरणकमल की वंदना। गुरु चरणकमल पराग की वंदना। गुरु चरणकमल रज की वंदना। गुरु चरणकमल नखज्योति की वंदना तुलसी ने की। गोस्वामीजी कहते हैं, मेरे गुरु की चरणरज से मेरी आंख को पवित्र करके मैं 'रामचरितमानस' कहने जा रहा हूं। नेत्र शुद्ध होते हैं तो किसी की निंदा आती ही नहीं; सब वंदन करने योग्य हो जाते हैं। इसलिए पूरे ब्रह्मांड को तुलसीदासजी ने प्रणाम किया। सबसे पहले पृथ्वी के देवता जिसको हम भूमिसुर, भूसुर, महिसुर कहते हैं ऐसे ब्राह्मण देवताओं की वंदना की। ब्राह्मण की वंदना करनी ही चाहिए। ब्राह्मण सदा वन्दनीय है। लेकिन यहां ब्राह्मण का कर्तव्य भी बता दिया। मोह से उत्पन्न होनेवाले संदेह को समय-समय पर जो नष्ट कर दे वो ब्राह्मण। अंधश्रद्धा नष्ट करे वो ब्राह्मण। अश्रद्धा को तोड़ दे वो ब्राह्मण। और श्रद्धा की परिपूर्ण स्थापना कर दे वो ब्राह्मण। तो ब्राह्मणों की वंदना होनी चाहिए। जिस में विवेक की प्रधानता है वो विप्र है। जो प्रपंच से विगत है वो विप्र है। सबसे पहले पृथ्वी के देवताओं को प्रणाम किया। उसके बाद सज्जनों की वंदना की। उसके बाद साधुचरित लोगों की वंदना कपास के साथ तुलना कर की। उसके बाद संतसमाज को तीरथराज प्रयाग का रूपक देकर साधुसमाज की वंदना की। खलों की वंदना की। क्योंकि आंख शुद्ध हो गई फिर किसकी निंदा करें? दृष्टों की, असज्जनों की, शठों की, खलों की, रजनिचरों की सब की तुलसीदासजी ने वंदना की। आखिर में तुलसी ने कह दिया-

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

अब तुलसी वंदना करने में 'मानस' के सभी महत् पात्रों की वंदना करते हैं; 'रामायण' के महान पात्रों का हमें परिचय दे रहे हैं। सबसे पहले है 'मातृदेवो भव।' इसलिए-

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची।

माँ कौशल्या की पहली वंदना। दस देवियां, दस महाविद्या में एक विद्या है माँ कौशल्या, जिसको तुलसी ने देवी कहा है। तुलसी की दृष्टि देखो। कौशल्या एक महिला नहीं है, महिमा है। एक पूर्व दिशा है माँ कौशल्या। ये पूर्व दिशा है कौशल्या जहां रामरूपी चंद्र प्रगट हुआ। तो माँ कौशल्या को पूर्व दिशा कहा। क्योंकि मातृत्व ये पूर्व दिशा है। पूर्व की सभ्यता का नाम है कौशल्या। माँ कौशल्या की वंदना की। फिर दशरथजी के साथ अन्य रानियों की वंदना की, मातृतत्त्व की वंदना की। फिर महाराज दशरथ की वंदना करते हुए राम के चरणों में सच्चा प्रेम करनेवाले महाराज अवधपति पितृचरण की वंदना की। फिर महाराज जनक की वंदना की। फिर संत भरत की वंदना। लक्ष्मणजी की वंदना। शत्रुध्न महाराज की वंदना की। पारिवारिक वंदना चल रही थी इसमें बीच में वंदना आई हनुमानजी की-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

श्री हनुमानजी महाराज की वंदना तुलसी ने की। तो हनुमंततत्त्व नितांत आवश्यक है। कोई भी साधना करो, हनुमंततत्त्व प्राणतत्त्व है। उसके बिना कोई साधना में हम ज्यादा आगे नहीं बढ़ पाते। ये हनुमंतत्त्व है। और हनुमानजी भी तो महादेवी है। उसको आप केवल पुरुषरूप में क्यों समझते हैं? वानररूप में नर ये भी तो महादेवी है। अहिरावण का विनाश करने के लिए बाबा पाताल में गये तो वो भी तो देवी के रूप में ही प्रगट हुए थे। मैं अक्सर कहता रहता हूं कि हनुमाानजी का आश्रय करना। आप किसी भी देव-देवियों की उपासना में अग्रसर है उसको छोड़ना मत लेकिन हनुमंत तत्त्व का आश्रय लेने से साधना में बल मिलेगा।

तो हनुमंतत्त्व नितांत आवश्यक है। लोग कहते हैं, बहनों से 'हनुमानचालीसा' हो कि न हो? 'सुन्दरकांड' का पाठ हो कि न हो? ऐसा प्रतिबंध तुलसी ने कोई लगाया नहीं। किसने लगाया मुझे खबर नहीं! बाकी माताएं भी 'हनुमानचालीसा' कर सकती है; 'सुन्दरकांड' का पाठ कर सकती हैं। माताएं भी रामकथा कर सकती हैं; हनुमंतकथा कर सकती हैं। क्या फ़र्क पड़ता है? सब कर सकती हैं। हां, विशेष साधना हो, जिसके कुछ विशेष नियम हो तो हमें निभाना चाहिए। इसमें हम विद्रोह क्यों करे? बाकी हनुमानजी तो सबका बाप है। आप लाख हनुमानजी की उपासना की मना करो तो भी वायु के रूप में, प्राणवायु के रूप में तो हनुमानजी तो तुम्हारी नाभि से नाक तक चलता ही रहता है। नाभि से नासिका, नासिका से नाभि हनुमान ही तो छलांग भर रहा है; ओर है कौन? मूलाधार से जो जाता है ये तत्त्व? तो हनुमानजी का आश्रय बहन लोग भी कर सकती है। श्री हनुमानजी की वंदना गोस्वामीजी ने की। 'विनयपत्रिका' के प्रसिद्ध पद से हनुमानजी की वंदना कर लें-

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

तो वंदना प्रकरण में गोस्वामीजी ने क्रम में श्री हनुमानजी महाराज की वंदना की। उसके बाद राम के सखाओं की वंदना की। उसके बाद श्री सीतारामजी की वंदना की। फिर वहां मातृतत्त्व पहले।

जनकसुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।

'मातृदेवो भव।' पहले। तो पहले माँ की वंदना, जानकी की-किशोरीजी की और फिर समग्र जगत के पिता परमात्मा राम की वंदना की। कथा के इस वंदना प्रकरण में क्रम में उसके बाद रामनाम महाराज की वंदना। रामनाम की महिमा नौं दोहे में बहत्तर पंक्तियों में पूर्णांक में तुलसीदासजी ने गाई है।

साधना करे वो साधक। साधना शक्ति के बिना नहीं हो सकती; शांति के बिना नहीं हो सकती और भक्ति के बिना नहीं हो सकती। आप लाख साधना करो, आपके मन में भाव न हो, भक्ति न हो तो आप साधना में केवल एक क्रियाकांड मात्र कर रहे हैं। साधना करनी है तो भक्ति चाहिए। साधना करनी है तो शक्ति भी चाहिए। हमारा शरीर रुग्ण है, बीमार है, अवस्था हो गई है, बहुत इच्छा है लेकिन शक्ति चाहिए इतने घंटे बैठने की या तो जो जैसी साधना। उसमें जो नियम-व्रत लगते हैं। उसमें शक्ति भी चाहिए। और अशांत परिस्थिति में साधना कैसे करोगे? शांति भी तो चाहिए। और शांति, भक्ति और शक्ति ये माँ के ही तो रूप हैं।

मानस–श्री देवी : २

विश्व को अब ऐसी माँ की ज़रूरत है जो वात्सल्यमूर्ति हो, शांतिमूर्ति हो

पवित्र नवरात्रि के दिनों में, साधना के दिनों में, अनुष्ठानी दिनों में हम परम भाग्यवान हैं कि माँ के अंक में बैठे हैं। हमने विषय चुना है 'मानस-श्री देवी।' माँ के कई रूप। ये जगत तत्त्वतः मातृमय है। लेकिन मैं ये स्पष्टता करके चलूं कि केवल विंध्यवासिनी में हम माँ का दर्शन करें; काली खोह में माँ के दर्शन करें; अष्ठभुजा के दर्शन करें अथवा तो जितनी ही शक्तिपीठ हैं हमारे देश में, पड़ोस में, इन सभी बिलग-बिलग पीठों में बिराजित माँ के दर्शन करें। लेकिन साथ-साथ विश्व की तमाम स्त्रियां ये माँ के ही रूप है, ये यदि हम भूल गये तो शक्तिपीठों से शक्ति तो मिलेगी, शांति नहीं मिलेगी; तामसता तो प्राप्त होगी, सात्त्विकता प्राप्त नहीं होगी; थोड़ा जटिलपना तो प्राप्त होगा, सरलता प्राप्त नहीं होगी। क्योंकि प्रत्येक स्त्री में माँ ही बिराजमान हैं। जड़-चेतन सब में माँ बिराजमान है। इसलिए तो कल हम चर्चा कर रहे थे कि तुलसी ने पहले 'सीय' शब्द लिया, 'सीयराम मय सब जग जानि।' ये पूरा जगत मातृमय है; सीया-राममय है।

माँ की स्तुति में हम पाठ करते हैं देवीस्तुति में कि 'स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु।' जगत में जितनी स्त्रियां है; हे माँ, इनमें तेरा ही रूप विराजमान है; ऐसा ऋषियों का डिमडिम घोष है। हम बहू में, बेटी में, बहन में, माँ में, झोपड़ों में रहनेवाली, महलों में रहनेवाली, विचरती स्थायी कोई भी मातृशरीर को देखें तो इस स्तुति के अनुसार 'सकला जगत्सु' सकल जगत की तमाम स्त्रियां हे माँ, ये तेरा ही रूप हैं। इस पाठ को हमें पक्का करना पड़ेगा। केवल विशेष स्थानों में माँ के दर्शन करें वो तो करना ही चाहिए क्योंकि यहां ज्यादा प्रगट है; यहां ज्यादा ऊर्जा है। ये स्थान तो बहुत आदि-अनादि स्थान है। लेकिन सब जगह वो ही तो है। 'विद्या समस्ता स्तव देवी भेदः।' हे माँ, तू ही समस्त विद्या है। बिलग-बिलग भेदों के कारण कभी तू ये विद्या, कभी तू ये विद्या, कभी तू ये विद्या। फिर वो वेदविद्या हो, फिर वो अध्यात्मविद्या हो, फिर वो योगविद्या हो, फिर वो ब्रह्मविद्या हो, फिर वो लोकविद्या हो; कितनी-कितनी विद्या हैं! प्रत्येक विद्या बिलग भेदों के करते हुए तू ही तो है।

तुलसीदासजी ने 'मानस' को भी शक्तिरूपा ही देखा है। नदी शक्ति है। 'मानस' को तुलसी ने नदी के रूप में देखा। 'सकल लोक जग पावनि गंगा।' 'सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी।' 'सदगुन सुरगन अंब अदिति सी।' तुलसी कहते हैं, देवताओं की माँ 'रामायण' हैं। तू अदिति है; तू मेकलसुता है; तू गंगा है; तू यमुना है। ये सब शक्तिरूपेण तुलसी ने रामकथा को देखा है बहुधा। तो कहने का तात्पर्य ये बात सिद्ध होती है अनुभव में भी कि 'या देवी सर्वेभूतेषु 'मानस' रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।' तो 'मानस' रूप में प्रस्थापित है। तुझ में दसों विद्या हैं।

सत रूपहि बिलोकी कर जोरे।
देवी मांगु बर जो रुचि तोरे।।

वहीं से विद्या की शुरूआत हुई। दस महाविद्या। माँ की उपासना की परंपरा में जो विद्याओं का वर्णन है; विद्या का जो स्वरूप है; शास्त्रों में भरा पड़ा है। वो तो है ही। लेकिन 'मानस' एक देवी है; 'मानस' श्री देवी है। उस महादेवी की भी दस विद्याओं का नाम तुलसी ने कथा के अंतर्गत पिरों कर रखा है।

कल भी मैंने स्मरण किया, 'या श्री स्वयं सुकृतिनां भुवनेशु लक्ष्मी।' पांच जगह माँ बैठी है। पांच जगह माता का स्थान है। पांच रूप। अनेक रूप है। लेकिन पांच रूप में इन मंत्र में बताया कि पुण्यशाली के घर में है माँ, तू श्री के रूप में विराजमान हो; लक्ष्मी के रूप में; जो पुण्यात्मा है, पुण्यशाली जीव है। अब पुण्य के तो कितने प्रकार है! दान करो वो भी

पुण्य; परोपकार करो वो भी पुण्य; जप-तप करो ये भी पुण्यप्राप्ति के साधन; कथा गाओ वो भी पुण्यप्राप्ति का साधन। कथा सुनो तो पुण्य। यद्यपि आखिर में तो जगद्गुरु शंकर कहते हैं कि-

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुखं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहंभोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानंद रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।

'रामचरितमानस' के अंत में गोस्वामीजी 'उत्तरकांड' में लिखते हैं, 'पुण्यं पापहरं।' इसके दो अर्थ; पुण्य देनेवाला और पाप हरनेवाला भी होता है। लेकिन शांकरमत के अनुसार यदि भजनानंदी व्यक्ति कोई उसका अर्थ निकाले तो कहेगा कि हे माँ, अंततोगत्वा तेरी उपासना से न पुण्य रहता है, न पाप रहता है। आदमी दोनों से पर हो जाता है।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।

तो पुण्य के कई प्रकार हैं। सुकृत के कई प्रकार हैं। लेकिन 'मानस' में कहा है पुण्य की चर्चा करते हुए-

पुन्य एक जग मंह नहीं दूजा।
मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा।।

गोस्वामीजी कहते हैं कि जगत में एकमात्र पुण्य है; दूसरा कोई नहीं। ये कहने की एक शैली है। जैसे कभी कहे, 'धरम न दूसर सत्य समाना।' दूसरा कोई धर्म नहीं है। बात तो ठीक है, धर्म एक ही होता है। धर्म मानी मेरे अनुभव में सत्य। सत्य एक ही होता है। लेकिन ये कहने की पद्धति भी है। तो मेरे श्रावक भाई-बहन, एक पुण्य है सबसे बड़ा और वो है मन, वचन और कर्म से विप्र चरण की पूजा। अब इन पंक्तियों को लेकर कई लोग गोस्वामीजी पर टूट पड़े हैं कि तुलसी ब्राह्मणवादी है! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सेवकगण एक व्यवस्था के रूप में तो हमारे यहां है। लेकिन ब्राह्मण को भी कहूं कि ब्राह्मण केवल वर्ण नहीं है। ब्राह्मण एक वैश्विक विचार है। एक वैश्विक वृत्ति का नाम ब्राह्मण है। हम सबको वर्णाश्रम में सीमित कर दें, बात ओर है।

पहले ब्राह्मणों की वंदना लेकिन हमें भी अपने ब्राह्मणत्व को सुरक्षित करना पड़ेगा। 'ब्राह्मण' शब्द के कई सगोत्रीय शब्द हैं 'विप्र', 'द्विज।' साधना करते-करते जिसका दूसरा जन्म हो गया वो ही द्विज है। एक तो माता-पिता की कूख से जन्मे हैं और दूसरा गुरु के गर्भ से जो पैदा हो जाता है। गुरु के गर्भ से जिसका जन्म हो जाता है वो द्विजत्व है। कोई भी व्यक्ति द्विज बन सकता है। जिस आदमी भले सेवक हो; कोई भी हो भारत का हो, विदेश का हो, जिसमें चौबीस घंटों बोलना, चलना, बैठना, उठना, खाना-पीना सब में विवेक की प्रधानता हो तो मेरी व्यासपीठ को उसको विप्र कहने में कोई तकलीफ़ नहीं। और 'पूजिअ बिप्र सील गुन हीना।' वहां प्रश्नार्थ है। उसके अर्थ सबने अपने-अपने पक्ष में ज़रूर खींचे हैं। छोड़ो इन विवाद को। मैं तो संवाद की बातें करने आया हूं। जिसमें विवेक जागृत हुआ वो धीरे-धीरे बुद्धपुरुष बन जाता है। ऐसा बुद्धत्व जिसने प्राप्त किया है उसके चरणों की पूजा सब से बड़ा पुण्य है। किसी बुद्धपुरुष, कोई सद्गुरु, कोई विप्र, कोई द्विज; केवल छोटे अर्थ में नहीं, बहुत विशाल अर्थ में। बिप्र कुल में जन्म मिल जाये ये तो अहोभाग्य है। लेकिन दायित्व भी तो बहुत बढ़ जाता है।

देवीपाठ में तो लिखा कि जगत में जो हृदयवाले हैं, दिलवाले हैं, अंतःकरणवाले हैं; हे पराम्बा, हे आदि अम्बा, हे विंध्यवासिनी, जो हृदयवाले हैं, जो अंतःकरणवाले हैं उसी में तू बुद्धि के रूप में विराजित है। लेकिन 'हृदयेषु बुद्धि।' अंतःकरणवालों के घर में तू बुद्धिस्वरूपा है। बुद्धि विवेकी हो ये बहुत आवश्यक है। तो जिसमें विवेक की प्रधानता हो। सभा में कैसे बैठना, कैसे उठना, व्यवहार मैं कैसे जीना, कैसे बोलना ये सब विवेक। लौकिक और अलौकिक दोनों विवेक।

इन देहाती भाई-बहनों का जो विवेक है; इनकी जो श्रद्धा है। और उनमें जो श्रद्धा है वो ही तो जगदम्बा है। जैसे पुण्यशालियों के घर में माँ, तू लक्ष्मीरूप मैं है। पापियों के घर में तू दारिद्र के रूप में है। हृदयवालों के घर में तू बद्धि रूप में है। और संतजनों के अंतःकरण में तू श्रद्धारूप में बैठी है। तो मेरे कहने का मतलब जिसमें विवेक की प्रधानता है वो विप्र है। और विवेक आता है सत्संग से। बिना सत्संग विवेक कभी नहीं आता। तुलसी की प्रसिद्ध पंक्ति-

बिनु सतसंग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

तो जिसके हृदय में विवेक की प्रधानता हो ऐसे महापुरुष की मन, वचन, कर्म से पूजा करो। पूजा करना मीन्स; केवल ब्राह्मणों को बिठाकर आप चन्दन चढ़ाओ, भोजन कराओ, दक्षिणा दे दो, ये तो सौ रुपयों में बात ख़तम! ब्राह्मण की पूजा मानी ब्राह्मण के प्रति आदर; ब्राह्मण के प्रति एक पवित्र भाव। ये दोनों चाहिए; मन से, वचन से, कर्म से। और विप्र का दूसरा अर्थ है प्रपंच से जो विगत है; जो प्रपंच नहीं करता। वरना तुलसीदासजी ने 'अयोध्याकांड' में ऐसा ब्राह्मण सोचने योग्य है ऐसा भी तो लिख दिया है-

सोचिए बिप्र जो बेद बिहीना।
तजि निज धर्म बिषय लयलीना।।

जो ब्राह्मण वेद को भूल जाये, वेद के विरुद्ध में हो जाये वो ब्राह्मण मरने के बाद अफ़सोस करने योग्य है। भरत के मुख के ये वचन है 'अयोध्याकांड' में। जो अपना स्वधर्म चुक जाये। 'गीता' तो कहती है, 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।'

हमारी चर्चा चल रही है मेरे भाई-बहन, 'मानस' की दस विद्या, जिस में दस पात्रों को तुलसी ने देवी कहा है उसमें पहली देवी है शतरूपा।

सतरूपहि बिलोकी कर जोरें।
देबि मागु बर जो रुचि तोरें।।

शतरूपाजी; आप जानते हैं, आदि मानव, आदि मनुष्य जो जगत का जिससे नर सृष्टि पैदा हुई।

स्वयंभू मनु अरु सतरूपा।
जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा।।

तो शतरूपा को तुलसी ने देवी कह कर पुकारा। स्वयं भगवान कहते हैं कि हे देवी, आपकी रुचि जो है, आपका मन जो चाहे सो वरदान मुझे मांगिए। तो 'मानस'रूपी महादेवी जो स्वयं है उसका ये एक पहला रूप शतरूपा। पहले मैं कहा करता था कि शतरूपा मानी बुद्धि। मनु मानी मन। मन और बुद्धि का दाम्पत्य है। बड़ा मुश्किल है। हमारे संतगण तो कहते हैं कि जब आपका मन बहुत वो हो उसके बाद आप बुद्धि में चले जाइये। बुद्धि से फिर आप चित्त में चले जाइये। ऐसे-ऐसे आप गति करो। बुद्धि निर्णय करनेवाला तत्त्व है; मन जरा चंचल है। लेनिक चंचल मन और स्थिर बुद्धि ये दोनों का दाम्पत्य बन जाये तो कितना प्यारा संसार हो जाये! विश्व में ऐसा परिवार मनु और शतरूपा का जो दाम्पत्य है। दो पुत्र उत्तानपाद और प्रियव्रत। उत्तानपाद का पुत्र फिर ध्रुव हुआ जो भगवान की भक्ति करके बाल उम्र में ध्रुवता प्राप्त कर गया। शतरूपा की बेटी देवहुति जो कर्दम ऋषि से ब्याही। और कर्दम और देवहुति के संसार से प्रसन्न दाम्पत्य से पुत्र का जन्म, भगवान आदि देव दीनदयाल कपिल भगवान का अवतार; कपिलावतार हुआ। और उसी कपिल भगवान ने 'सांख्य' शास्त्र जगत को दिया ऐसे महाराज मनु उसकी धर्मपत्नी शतरूपा है। एक विद्या है शतरूपा। उसको कई रूप में देखना पड़ेगा।

तो शतरूपा का सीधा-सादा अर्थ करे तो जिसके सौ रूप है वो शतरूपा। सौ प्रकार के रूप है। 'अनेक रूप रूपाय।' ये शतरूपा। और काली माँ के कितने रूप हैं! कई रूप हैं माँ काली के। और दस विद्या में छिन्नमस्ता आदि-आदि कितने-कितने रूप की गणना आई! मातंगी, बगला कितने रूपों की महाविद्या में जो चर्चा है। इसमें जो सात्त्विक पक्ष है वो ही मैं पेश करूंगा। क्योंकि ये सब बहुत कठिन साधना; ये महाविद्या की साधना बड़ी कठिन-जटिल है। समर्थ गुरु मिले तो ही उसमें जाना। कई लोग कठिन साधना में जाते हैं फिर फ़ंस जाते हैं; बीमार हो जाते हैं; चेहरा तामसी हो जाता है; पूरा जीवन रजोगुणी हो जाता है। शांति तो मिलती ही नहीं यार! इसलिए समर्थ गुरु चाहिए इन विद्याओं में पारंगत होने के लिए।

आज मेरे पास एक चिट्ठी भी आई, 'ये नवरात्रि के दिन हैं; माँ का ये स्थान है तो ऐसा कोई अनुष्ठान हमें बताओ कि दस दिन में सिद्धि मिले।' मैं सिद्धि मिले ऐसी कोई तपस्या दिखा नहीं सकता क्योंकि मेरी कोई औकात नहीं है; मेरा कोई प्रवेश नहीं है। हां, दस दिन में शुद्धि मिले ऐसा कुछ कर सकता हूं; अंतःकरण शुद्ध हो ऐसा। और मैं सिद्धि से भी ज्यादा शुद्धि को महत्त्व देता हूं। जो महापुरुष ने उपासना करके, साधना करके सिद्धि प्राप्त की वो सब जानते हैं कि इस सिद्धि में भी जरा अशुद्धि आ गई तो गिरने से देर नहीं लगती। तुलसी ने लिख दिया है कि अविद्या ऐसे परख लेती है कि बड़ी सिद्धि के शिखर से आदमी गिर जाता है। मेरे पास तो ये व्यवस्था नहीं है सिद्धि की। हमारे यहां अष्ट सिद्धि जो कही जाती है न; अष्ट सिद्धि नौ निधि। लेकिन मैं तो कहता हूं, अष्ट शुद्धियां होना ये बहुत ज़रूरी हैं। हमारे जैसे लोग, हम संसारी लोग हैं। जो महापुरुष साधना करते हैं, तपस्या करते हैं उसको प्रणाम करो; उसके आशीवार्द लो। बाकी हमारी औकात कहां? हनुमानजी की कृपा होती है तो सिद्धि तो जो चाहे उसको मिले। लेकिन अष्ट शुद्धि मिले। 'अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता।' और वो भी हनुमानजी को किसने दी थी? 'अस बर दीन्ह जानकी माता।' ये देवी ने ही तो दिया था; माँ ने ही तो दिया था कि जा, तू अष्ट सिद्धि नव निधि का दाता बनेगा। अष्ट शुद्धि बस। जितनी हो सके। हरिस्मरण करते-करते मन की शुद्धि, बुद्धि की शुद्धि, चित्त की शुद्धि, अहंकार की शुद्धि। तन शुद्धि, शरीर शुद्धि हो; शरीर शुद्ध रखो ये पांचवीं शुद्धि। धनशुद्धि; परमात्मा ने पैसा दिया हो तो दसवां भाग निकालो परमार्थ के लिए ये धनशुद्धि। दसवां हिस्सा निकालो।

दसवां हिस्सा निकालो। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी कमाई का दसवां हिस्सा निकालना चाहिए। देश का प्रत्येक डॉक्टर दस मरीज़ में एक मरीज़ को बिना चार्ज किये तपास करे, ये उसका दशांश होगा। देश का शिक्षक दस छात्र में एक छात्र को बिना शुल्क पढ़ाये। अपना-अपना दसवां हिस्सा निकालो। एक बड़ी क्रांति हो जाये साहब! सौ रुपया जो कमाता है उसको दस रुपया निकालना कोई बड़ी बात है? मैं कहता रहता हूं, एक लाख रुपया जो कमाये वो दस हज़ार परमार्थ के लिए बिलग कर दे। अभावग्रस्त लोगों के लिए, धर्म के लिए, संस्कृति के लिए, तीर्थों के लिए, गंगाशुद्धि के लिए, तीर्थों की नदियों की स्वच्छता के लिए। दसवां हिस्सा निकालो।

तो तनशुद्धि; धनशुद्धि। वचन शुद्धि रखे आदमी। वाणी के तीन दोष हैं। एक तो व्याकरण दोष; दूसरा उच्चारण दोष। और तीसरा होता है कटु दोष। जो जबान कटु बोलती हो ये दोष बताया गया है। तो सिद्धियां हैं। हम शुद्ध रहें बस। मन से, वाचा से, कर्म से जितना रह पायें। आठ प्रकार की शुद्धि ये सिद्धि है। बाकी साधना की सिद्धि है। 'जपात् सिद्धि।' ये सूत्र का अनादर नहीं किया

जा सकता। लेकिन सिद्धि को पचाना कोई समर्थ गुरु की कृपा हो और उपासना करनेवाला इतना सरल चित्त से हो तो ही हो सकता है। बाकी बहुत कठिन है यार!

तो माँ के जो रूप हैं उसमें एक रूप है काली। और जहां तुलसी ने शतरूपा को देवी कह दिया। शतरूपा का तो अर्थ मैंने अभी कहा कि सौ रूप। सौ क्या, हज़ारों-हज़ारों रूप हैं काली के रूप में। लेकिन कई रूप माँ काली के; ये जो एक विद्या है उसके। और प्रसिद्ध रूप तो हमने यही सबने दुनिया ने देखा कि जीभ बाहर है और ऐसा-ऐसा रूप है। हाथ में वो है। मुंडमाला धारण की है। एक पैर वो। तो अच्छा किया। कल से मैं बहुत आनंदित हूं कि ये सब रूप का सुन्दर अर्थ दिखा करके माँ का शांत रूप निर्मित कर दिया। और विश्व को अब ऐसी माँ की ज़रूरत है जो वात्सल्यमूर्ति हो; शांतिमूर्ति हो; सुन्दर रूप हो। मैंने तो मेरे गांव तलगाजरडा के मंदिर में रामजी के हाथों से धनुषबाण और हनुमानजी के हाथ से गदा भी ले ली; अब शांति से चुपचाप बैठो! अब 'अहिंसारूपेण संस्थिता' हो।

शूलेन पाहिनो देवी देवी खड्गे चाम्बिके।

दुर्गा पाठ में जो आता है। इसका क्या अर्थ करोगे आप? 'शूलेन पाहिनो देवी' इसका मतलब ये भी कर सकते हैं हम कि हे माँ, अब जगत के शूलों से हमारी रक्षा करो। जगत के जो बहुत प्रकार के शूल है, जो पीड़ाएं हैं। और इसलिए तो हमारे 'मानस' के 'रुद्राष्टक' में लिखा है; बाबा कागभुशुंडि ने महाकाल के मंदिर में ये 'रुद्राष्टक' गाया तब यही शब्दावली आई-

त्रयःशूल निर्मूलनं शूलपाणिं।
भजेहं भवानिपतिं भावगम्यं।।
नमामिशमीशान निर्वाणरूपं।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।।

हे माँ, हे पराम्बा, हे विंध्यवासिनी, पूरी दुनिया में जहां ख़तरा ही ख़तरा है! लोग एक-दूसरे का संहार करने में लगे हुए हैं, ऐसे समय में हे माँ, हे अम्बा, हे जगदम्बा, ख़तरों से बचा। मुझे ऐसा अर्थ सुनाई देता है अस्तित्व से, 'शूलेन पाहिनो देवी।' इन जगत के शूलों से 'पहिनो' मानी हमारी रक्षा करो। 'पाहि खड्गे चाम्बिके।' अम्बा मानी माँ; अम्ब मानी माँ। हे माँ, जगत के खड्गों से तू हमारी रक्षा कर; हमे बचा। कितनी प्यारी पृथ्वी का संहार हो जाएगा!

हमारे पड़ोस में भी कूदा-कूद कर रहे हैं! कोई ये कर रहा है, कोई ये कर रहा है! केवल क्रोध से ही काम हो ये भ्रांति से मेरा देश बाहर निकले; बोध से बहुत काम हो सकता है। एक बुद्धपुरुष बहुत कंट्रोल कर सकता है। हमारा पड़ोसी भाई-भाई की बातें करनेवाला आदमी! इतना हो रहा था कि ये कर देंगे, ये कर देंगे! चिंता का विषय था। छोटी-सी बातचीत हुई; जो कारण हुआ लेकिन अपने आप पीछे हट गये! तो इस आध्यात्मिक देश में ऐसे अर्थ भी आने लगे कि किसी योगी ने ये काम करवा लिया। मैं इस पक्ष में राजी हूं कि कोई कर सकता है साहब! यस, किसी की साधना भी रोक सकती है। केवल साधन से ही काम हो, शस्त्र से ही काम हो ऐसा क्यों तुमने मान्यता दी? यद्यपि शस्त्र ज़रूरी है। परंतु शास्त्रों को कमज़ोर क्यों समझते हो? कभी-कभी शास्त्र भी काम कर सकते हैं; शस्त्र से ज्यादा काम कर सकते हैं। सब बोले जा रहे थे। लेकिन चीन थोड़ा हट गया। ये तो हकीक़त है; थोड़ा हट गया। परमात्मा उसको ठीक रखे। लेकिन ये समझ में किसी महापुरुषों की साधना भी काम कर सकती है। केवल शस्त्र से ही काम हो ऐसा नहीं। अहंकारशून्य साधना क्या नहीं कर सकती? हां, साधना कितनी भी प्रबल हो लेकिन साथ-साथ अहंकार है, तो कुछ नहीं कर पाता। उसकी सभी ऊर्जा खुद पर आती है और आदमी को विकृत कर देती है; भीषण बना देती है। उसका दर्शनीयपना ख़त्म हो जाता है। 'प्रभा श्री शरीरं।' जो शरीर की श्री होती है, ख़त्म हो जाती है साहब! ये भी एक संभावना तो है। ये हो सकता है। क्योंकि 'रामायण' में लिखा है, बुद्धि को प्रेरणा देनेवाले शिव है। 'बुद्धि प्रेरक शिव।' जीव की न माने कोई लेकिन शिव यदि उसकी बुद्धि को प्रेरित करे तो मान भी जाए। तो हो सकता है।

जगत में ये सब जो हिंसा का वातावरण, आतंकवाद का वातावरण, बस मारो-काटो की चर्चा, इससे अब जगत बाहर निकले; हमारे देवस्थान इससे मुक्त हो; इससे बाहर आये। ये ज़रूरी है; ये आवश्यक है। इसलिए माँ चामुंडा के चरणों में हमारे चोटीला-गुजरात में कथा कह रहा था तब मैंने ये सूत्रपात शुरू किया था कि 'अहिंसारूपेण संस्थिता।' तो बाप! मुझे इसका अर्थ ऐसा

समझ में आया कि माँ, हमारी रक्षा कर। और जब माँ के स्तोत्रों में जब रक्षा की घटना आती है तो हमारी कमर की रक्षा कैसे की जाये? हमारे कंधे की रक्षा कैसे की जाये? हमारे सिर की रक्षा कैसे की जाये? हे माँ, तेरा ये रूप हमारी पीठ की रक्षा करे। तेरा ये रूप हमारे हृदय की रक्षा करे। हमारी नासिका, हमारे कपोल, हमारे होठ, हमारा चेहरा, हमारी पीठ और अखिल ब्रह्मांड का, विश्वरूप का एक वपु, उसकी रक्षा हो।

तो माँ के कई रूप हैं। इसमें इसी प्रदेश में माँ के शांत रूप की अवधारणा ये मुझे ज्यादा रास आती है। बहुत आनंदित करती है। तो काली के कई रूप है। मैंने कई बार कहा है, जिसको बहुत अच्छा वक्ता बनना हो उसको कालिका की साधना करनी। ये नियम है यार! वाक्शक्ति बहुत आती है। आप ये मत समझना कि मोरारिबापू ने ये साधना की है। मुझे तो कालीरूप गुरु ने कृपा कर दी तो मेरा तो सब ये होता। 'रामायण' काली है। देखो, 'रामायण' स्वयं कालिका है। मैं थोड़े कहता हूं, याज्ञवल्क्य महाराज ने कह दिया है-

महामोहु महिषेसु बिसाला।
रामकथा कालिका कराला।।

तो माँ के कई रूप है। कलियुग में अब ज़रूरत है उसके सौम्य रूप की, जो हमें अंक में लेकर चारों तरफ़ से सुरक्षित रखे। तो शतरूपा का मतलब है अतिशयोक्ति अलंकार। यदि उसका शब्दार्थ करें तो सौ रूप है; शब्दार्थ न करें तो माँ कालिका के भी कई रूप हैं। देशकाल के अनुसार इन रूपों की चर्चा होती रहनी चाहिए।

तो 'मानस' स्वयं श्री देवी है। इसलिए इस विषय को लेकर केवल वाणी के पुष्प माँ के चरणों मे अर्पित करने का एक प्रयासमात्र है। बाकी तो हम क्या कर सकते हैं? इसलिए इस विषय को मेरी व्यासपीठ ने चुना। एक बार दोनों पंक्तियों का गायन करें-

उभय बीच श्री सोहइ कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।

छबि है भगवान की वनयात्रा की। वनयात्रा में भगवान राघवेन्द्र आगे चलते हैं। लक्ष्मणजी पीछे चलते हैं और बीच में माँ जानकीजी चलती हैं। इस छबि को तुलसीदास इन नज़र से देखते हैं। वहां कई रूपक बताये। लेकिन इन में से एक है कि आगे ब्रह्म हैं राम। लक्ष्मण जीवाचार्य है; जीवों के आचार्य हैं। और ब्रह्म और जीव के बीच में जानकीजी कैसे सोह रही हैं? जेसे ब्रह्म और जीव के बीच में पराम्बा महामाया शोभित होती हो, ऐसे श्री तत्त्व शोभित है। और ये विन्ध्याचल का जो इतिहास है विंध्यवासिनी का उसमें ये सब पुराण के बिलग प्रसंग आलेखित हैं। मैं भी इस किताब को देख रहा था कि कैसे इस माँ का प्रागट्य हुआ? तो एक अर्थ में तो वो महामाया बहन ही हो गई न कृष्ण की इसलिए राखी बंधना बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन याद रखें, माँ जो है श्री है।

माया दो प्रकार की है। 'विद्या अपर अविधा दोउ।' एक अविधा नाम की माया होती है और विद्या। जो माँ है वो अविद्या माया नहीं है, विद्या माया है। जिसके आधार से भवबंधन में पड़े जीव मुक्त हो जाते हैं। अविद्या नाम की माया स्वंतत्रों को भी परतंत्र कर देती है। 'जा बस जीव परा भव कूपा।' अविद्या के आश्रित जीव संसार कूप में गिरते हैं। और विद्या नामक माया ये जगत को मुक्ति देती है। और एक अर्थ ये भी हो सकता है, ब्रह्म मानी 'नमो ब्रह्मण्य देवाय।' ब्रह्म मानी ब्राह्मण देवता। जीव मानी हम सब। दर्शन करने जायें; एक ओर ब्राह्मण देवता, एक ओर हम जीव; उस दोनों के बीच विंध्यवासिनी बैठी है। एक ब्राह्मण देवता हमें गाईड कर रहे, यहां दर्शन करो, यहां दर्शन करो, माँ का आशीर्वाद लो। एक हम जीव लोग मार्गदर्शन पा करके पूजा करते हैं। लेकिन दोनों के बीच में कूटस्थ- तटस्थ और दृष्टा और साक्षीरूप में बैठी हैं वो माँ हैं विंध्यवासिनी।

देबि पूजि पद कमल तुम्हारे।
सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।।

तो एक छबि है भगवान के वनगमन की जहां जगदम्बा जानकी श्री रूप में शोभा दे रही हैं। और दूसरी जगदम्बा माँ भवानी। गिरिजा स्तुति जब की गई 'बालकांड' में तब कहा गया, हे देवी, आपके चरणकमल की पूजा करने से सुर, नर और मुनि तीनों सुख प्राप्त करें। सुर मानी स्वर्ग, नर मानी मृत्युलोक और मुनि मानी गुफाओं में, गर्भ में, गहराई में जाकर तपस्या करनेवाले। ओ ऊपर मध्य और बिलकुल गहराई में जाकर चिंतन करनेवाले तीनों को तू

सुख देनेवाली। नरसृष्टि को भी आप सुख देती हैं; मुनिसृष्टि को भी सुख देती हैं और सुरसृष्टि को भी आप सुख देती हैं। और मैं माँ की गोद में बैठकर रामकथा कह रहा हूं इसलिए सब शक्तिपरक अर्थ निकालूं, माँपरक अर्थ निकालूं ऐसा मत समझना।

व्यासपीठ तो बिलकुल तटस्थ होती है। लेकिन 'रामचरितमानस' में भी आया है कि जब तक रावण के हृदय में जानकी बिराजमान है तब तक राम उसको मार नहीं पाए। क्योंकि पराम्बा बिराजमान है। भगवान राम तीस-तीस तीर मारते थे। दस मस्तक, बीस भुजाएं छेदी जाती थी लेकिन वो मरता नहीं था। और पूछना पड़ा; जानकीजी मुश्किल में आ गई कि ये मरता क्यों नहीं? तब तुलसीदासजी ने स्पष्ट लिखा कि नहीं मर रहा इसका कारण रावण के हृदय में जगदम्बा विराजमान है। और जगदम्बा के होते कौन मार सकता है? और जगदम्बा के हृदय में राम बिराजमान है। राम के हृदय में चौदह ब्रह्मांड हैं। पराम्बा जानकी का ध्यान जब चुक जाएगा तब प्रभु से मरेगा। स्मरण मरण से आदमी को मुक्त रखता है। उसमें भी माँ का स्मरण रावण का; राम के बाण तो मरणों का मरण है; मृत्यु की मृत्यु है।

आइये, अब थोड़ा कथा का क्रम निभा लूं। 'रामचरितमानस' का वंदना प्रकरण जो गुरुचरण रज से नेत्र को पावन करके तुलसी ने शुरू किया उसी संक्षिप्त क्रम में अब गोस्वामीजी कहते हैं, रघुबर के कई नाम हैं। दशरथनंदन के कई नाम हैं। कौशल्यानंदन के कई नाम हैं। लेकिन इनमें से जो उसका राम नाम है इस राम नाम की मैं वंदना करता हूं। 'राम' शब्दब्रह्म को महामंत्र को महामंत्र का दर्जा दिया है। महामंत्र है रामनाम। मैं हर वक्त कहता हूं कि केन्द्र में रामनाम है लेकिन कोई उसका संकीर्ण अर्थ न करे। रामनाम इतना उदार और आकाश के समान है। कोई भी नाम। राम तो एक केन्द्र हैं। लेकिन आप कृष्ण का नाम जपे; शिव नाम जपे; आप दुर्गा नाम जपे; कोई भी नाम लो। नाम की महिमा गज़ब है। भगवान शिव ने केवल नाम का आश्रय किया तो विष पीने का अवसर आया तो भगवान शंकर कालकूट नामक विष को पीने लगे तो कहते हैं, राम स्मरण के साथ उसने विषपान किया तो विष और राम उसकी संधि हो गई; विष प्लस राम हो गया 'विश्राम।' शिव ने विश्राम पाया। कालकूट नामक विष रामनाम के प्रताप से अमृत का फल दे गया। यही है रामनाम।

सतजुग में तो लोग ध्यान से परमात्मा की प्राप्ति करते थे। हम कहां ध्यान करने बैठे? ध्यान की विधि कोई सिखा भी दे तो इतना समय कहां? त्रेतायुग में बड़े-बड़े यज्ञ होते थे। आज हम लोग यज्ञ कहां करेंगे इतने बड़े-बड़े? द्वापर में घंटों तक लोग पूजा-अर्चना करते थे; हम कहां कर पायेंगे? इसलिए गोस्वामीजी कहते हैं, कलियुग में केवल हरिनाम का आश्रय करो। तो नाम की महिमा अद्‌भुत है। जो मंत्रों से प्राप्ति होती है इससे कई गुना प्राप्ति परमात्मा के नाम से होती है। गोस्वामीजी ने कहा कि प्रमाद से, अनख से कैसे भी कोई नाम का आश्रय करें उसके लिए दसों दिशाएं मंगल सिद्ध होती हैं। स्वयं राम भी अपने नाम की महिमा का गायन नहीं कर पाते, ऐसा है रामनाम का प्रभाव। तो मेरे भाई-बहन, आप लम्बे, बड़े, चौड़े मंत्रों का जप कर सकें तो करो ज़रूर। स्वागत। लेकिन सबसे सरल हरिनाम है। और कोई आग्रह नहीं आप रामनाम ही लो। कोई भी नाम लो। तो नाम की भूरिशः महिमा गोस्वामीजी ने बताई।

विश्व को अब ऐसी माँ की ज़रूरत है जो वात्सल्यमूर्ति हो; शांतिमूर्ति हो; सुन्दर रूप हो। मैंने तो मेरे गांव तलगाजरडा के मंदिर में रामजी के हाथों से धनुषबाण और हनुमानजी के हाथ से गदा भी ले ली; अब शांति से चुपचाप बैठो! जगत में ये सब जो हिंसा का वातावरण, आतंकवाद का वातावरण, बस मारो-काटो की चर्चा, इससे अब जगत बाहर निकले; हमारे देवस्थान इससे मुक्त हो; इससे बाहर आये। ये ज़रूरी है; ये आवश्यक है। इसलिए माँ चामुंडा के चरणों में हमारे चोटी ला-गुजरात में कथा कह रहा था तब मैंने ये सूत्रपात शुरू किया था कि 'अहिंसारूपेण संस्थिता।'

मानस-श्री देवी : ३

बलि केवल उग्ररूपा देवी को चढ़ाया जाता है, सौम्य देवी को नहीं

'रामचरितमानस' के आधार पर श्री देवी की चर्चा हो रही है। माँ के बहुत स्तोत्र मिलते हैं। 'मार्कंडेय पुराण' में तो पूरी माँ की विशद चर्चा है। और मैं निवेदन भी करूंगा आपको कि आपको समय मिले आप भले किसी इष्ट के उपासक हो फिर भी हो सके तो नवरात्र में 'रामचरितमानस' का आप पाठ करते हैं तो उसमे सब आ जाता है। ये मेरी श्रद्धा है; गुणातीत श्रद्धा। फिर भी हम श्री देवी को कई रूप में देखते हैं तब 'दुर्गा सप्तशती' जब भी अवसर मिले सात्त्विक भाव से; सिद्धि के लिए नहीं, शुद्धि के लिए कभी पाठ करना। मैं ये करके आपको कह रहा हूं। बिना किये मैं नहीं कहता। मुझे प्रिय है। इनमें से भी कई मंत्र तो मुझे अत्यंत प्रिय हैं। सब अद्‌भुत हैं।

आज मुझे एक प्रश्न पूछा गया है कि बापू, मंत्र, तंत्र और यंत्र में क्या फ़र्क है? आप मेरे साथ संमत हो ऐसा मैं नहीं चाहता। आप केवल मुझे सुने और फिर आपकी अनुभूति क्या है? आपकी अन्तःकरणीय प्रवृत्ति आपको किस रूप में इन बातों को कुबूल करना, नहीं करना, जो राय दे उसके मुताबित चलना। मैं जो कहूं वो अंतिम नहीं हैं। प्लीज़, इति नहीं है। केवल विचार प्रस्तुत हैं मेरे गुरु की कृपा से, अनुभव से। प्लीज़, आप उसको अंतिम न समझें। आपके विचार भी हो सकते हैं। आपकी निजता को मैं सलाम करूं।

मुझे कल एक बहुत अच्छी चिट्ठी मिली कि बापू, आप पूरी दुनिया में घूमते हैं; हमें लग रहा है कि आप किसी के प्रभाव में नहीं आते। आपने सच निर्णय किया है। मुझे अच्छा लगा किसी साधक का प्रश्न। कोई कितना ही बड़ा संगीतज्ञ हो; मैं एन्जॉय करूं लेकिन प्रभाव में नहीं आता। कितना ही बड़ा नाट्यकार हो, मैं बहुत एन्जॉय करता हूं दिल से। लेकिन मैं प्रभावित नहीं हो पाता। कोई अच्छा शे'र, काव्य, अच्छा चलचित्र, अच्छा नाटक, अच्छा कोई प्रवचनकार, अच्छा कोई तत्त्ववेत्ता, अच्छा कोई योगी, अच्छा कोई बुद्धपुरुष जो भी है, मेरे हृदय से उसके प्रति प्रणम्य भाव होता है लेकिन प्रभावित नहीं हो पाता। ये मेरी कमज़ोरी समझो, जो हो, परमात्मा जाने! लेकिन इसका एक कारण मैं माँ के दरबार में हृदय से कहना चाहता हूं कि मैं चौबीस घंटों अपने स्वभाव में जी रहा हूं इसलिए कोई मुझे प्रभावित नहीं कर पाता। जो अपने स्वभाव में नहीं जीयेगा उसको एक क्षुल्लक बात भी प्रभावित कर देगी। सावधान रहियो। निजता के समान बड़ी उपलब्धि क्या है? ये जगत में अंधश्रद्धा क्यों फैली हुई है? हम परचों में, चमत्कारों में तुरंत प्रभावित हो जाते हैं! कितने बुरे परिणाम जगत को सहने पड़ गये हैं! और पूरी सनातन धर्म परंपरा कभी-कभी बदनाम होती जा रही है।

अथर्ववेद में माँ भगवती का एक बहुत बड़ा सूक्त है, सूत्र है, स्तुति है 'देवी अथर्वशीर्ष।' उसमें अथर्ववेद के ऋषि ने कहा है कि 'हे माँ, ज्ञान भी तू है, अज्ञान भी तू है।' देवी कहती है, 'ज्ञान भी मैं हूं, अज्ञान भी मैं हूं। विद्या भी मैं हूं, अविद्या भी मैं हूं। वेद भी मैं हूं, अवेद भी मैं हूं। छोटा भी मैं हूं, बड़ा भी मैं हूं।' तो हम वही हैं। क्यों दूसरों की छाया में आ जाते हैं? भगवान शंकर निजता में डूबे रहते हैं। इसलिए योगी नहीं, योगीश्वर हैं। भगवान श्री कृष्ण निरंतर निजता में रहे। लोग गालियां दे, लोग वचन तोड़नेवाला कहे; क्या-क्या करार देते हैं कृष्ण पर! लेकिन वो निजता में जीए हैं। हम कितनों के प्रभाव में जीए जा रहे हैं! हम हमारे तो बचे ही नहीं! एक शे'र है कतील शिफ़ाई का-

मैं खुद को कहीं बांट न डालूं दामन दामन।
कर दिया तूने अगर मेरे हवाले मुझको।

मैं अपने को खो दूंगा, अपने को बांट दूंगा। हे माँ, मुझे तेरा रहने दे। आप मानोगे, इन नौं दिन मुझे सदैव मेरा हनुमान ब्रह्मचारिणी माँ के रूप में दिखता है। ये हनुमान मुझे पुरुष नहीं दिखता इन नौं दिनों में। मैं आंखें मुंदकर बैठता हूं तो हनुमान ही चुनरी ओढ़े दिखते हैं। मैंने कई बार कहा, ये हनुमानजी का स्वरूप तलगाजरडा में स्थापित है वो कभी मुझे बुद्ध दिखता है। मैं क्या करूं? कुछ बौद्ध नाराज़ हैं मेरे निवेदन से। मुझे यही हनुमान में कभी-कभी महावीर दिखते हैं। मुझे यही हनुमानजी में

कभी-कभी ठाकुर रामकृष्ण दिखतें हैं। ये मेरी मज़बूरी है। क्या करूं? यहीं अरुणाचल का बादशाह मुझे रमण के रूप में दिखते हैं। कभी मुझे मेरे त्रिभुवन दादा के रूप में दिखते हैं। मैं क्यां करूं? ये दृष्टिकोण है तो ऐसा दोष करने की मुझे छूट होनी चाहिए। ऐसा दृष्टिदोष जनम-जनम रहे। क्योंकि अंततोगत्वा हमें स्वभाव में जीना है।

तो मैं शांति से बैठा रहता हूं तो, कमरे में बैठूं, अग्नि के पास बैठूं, झूले पर बैठूं। ये गंगा बहती है जहां मैं ठहरा हूं, उसको ध्यान में रख कर बैठूं तो आजकल हनुमानजी माँ के रूप में दिखते हैं। मैं कहता हूं, अरे बाबा, मैं हैरान हो जाता हूं! तूने साडी कब पहनी? तो बोले, पहन ली, तो चुनरी चढ़ा! तो कल की चुनरी मैंने उसको चढ़ा दी। और माँ का एक रूप है ब्रह्मचारिणी। जैसे आज तीसरा दिन चंद्रघंटा का दिन है। प्रथम शैलपुत्री। आज तीसरा दिन है; आज का दिन है नौ दुर्गा में चंद्रघंटा का दिन है। जो नौ रूप है माँ के। मेरा ये कहना है कि रामकथा को केवल धर्म संमेलन मत समझो; केवल मेला मत समझो। ये जीवन के उर्ध्वारोहण के लिए एक महिमावंत शिबिर है। यहां नौ दिन में हम चाहें तो बहुत उर्ध्वगमन कर सकते हैं।

कितना कोई बड़ा राजनेता हो, विश्वनेता हो, किसी भी कला और किसी भी विद्या का बहुत बड़ा आदमी हो; मैं हृदय से दाद देता हूं। और फोन पर कोई कवि से मैं बात करूं और मैं कहता हूं कि एक शे'र सुनाओ तो वो कवि मुझे शे'र सुनाये तो मैं इतना प्रसन्न होता हूं; प्रभावित नहीं होता हूं। क्योंकि मेरी निजता मेरी निजता है। अपने को बांटने के लिए निकले हैं, बेचने के लिए थोड़े ही निकले हैं! कोई अच्छा बजाए, कितना आनंद होता है! मेरा वक्ता कोई अच्छा बोले, मैं इतना अंदर से प्रसन्न होता हूं कि क्या माँ ने कृपा की है इस पर! कितना प्यारा बोल रहा है! लेकिन तलगाजरडा को प्रभावित करना मुश्किल है। स्वभाव में जीयो। और दुनिया ऐसी है कि किसी को स्वभाव में जीना नहीं देने चाहती!

मैंने कल ही कहा, 'स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु।' जगत की प्रत्येक स्त्री दुर्गा है। ऐसा दुर्गा सप्तसती और चंडीपाठ में आया है। और चुनरी जो एक उपक्रम ये कथा के लिए शुरू किया; ये मैं न भी ओढ़ाऊं विंध्यवासिनी को! हो सकता है। मैं रास्ते से गुजरता हूं, फटे कपड़ें पहने मेरी बहन-बेटियां निकली हो इसको भी वाणी की चुनरी चढ़ा दूं। मेरे लिए तो वही दुर्गा है। हो सकता है। और माँ कहां साड़ी की भूखी है? उसके द्वारा जो पूजागृह में हैं, जो सेवक हैं वो लाभान्वित भी होंगे। लेकिन जो गरीब कोई रास्ते पर बैठी उस माँ को एक साड़ी ओढ़ाना ये क्या विंध्यवासिनी को साड़ी ओढ़ाना नहीं है? वहां साड़ी ओढ़ाने से शायद आपको सिद्धि मिले। लेकिन मोरारिबापू के वचन पर भरोसा करो, यहां एकाध ओढ़ाओंगे तो सिद्धि न भी मिले लेकिन अंतःकरण की तसल्ली बहुत मिलेगी; शुद्धि मिलेगी; पावित्र्य महसूस करोगे।

तो मुझे पूछा गया कि प्रभाव क्यों नहीं? इसमें कोई बड़प्पन नहीं है। न अपनी कोई नम्रता है, न कोई दंभ। ये स्वाभाविक है। दूसरे की सोने की अदा हो ऐसा तुम सोओगे तो ठीक से विश्राम करोगे? तुम्हारी सोने की अपनी अदा होनी चाहिए। भगवान बुद्ध ऐसे सोते थे तो तुम भी नाटक शुरू करो, बुद्धि होगी वो भी चली जाएगी! बुद्ध बुद्ध है। हम और आप हम हैं। मैंने गत कथा में सापुतारा में कहा था कि नृत्य में आप नकल कर सकते हैं। नृत्य में नकल हो सकती है, कृत्य में कभी नकल नहीं हो सकती। जब आदमी कृत्य में नकल करने लगा; उसने कपड़े पहने वैसे मैं पहनूं, वो बोले तो वैसे हाथ करता है तो वैसे मैं करूं। तुम्हारा खुद का भी खो दोगे और बाज़ी हार जाओगे! आप सोचो। अब मुझे आदत-सी हो गई है, मैं कथा में बिलकुल सहज बोलता हूं तो कभी-कभी मैं ऐसे बैठ जाता हूं। मेरे कई वक्ता ऐसे अब करने लगे हैं! तुम्हारा खुद का खो रहे हो! ये नहीं हो सकता। क्यों ज़िद कर रहे हो? तुम ज़िद किये हुए हो। एक गज़ल मैं बहुत पुरानी गाया करता था। मैं आपको साल बताऊं, ७६ या ७७, अंदाज़ है मेरा। तब मैं अकेले-अकेले ये गज़ल बहुत गाता था-

तुम ज़िद तो कर रहे हो हम क्या तुम्हें सुनायें।
नग्में जो खो गये हैं उसे कैसे गुनगुनायें।

तो बाप! हमारी चर्चा चल रही है, परमात्मा ने हम सबको अनुपम बनाया। दूसरे के साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। लाख चाहे तो भी हिमालय तिल का दाना नहीं बन सकता और तिल हिमालय नहीं बन सकता। स्पर्धा ही गलत है। क्यों हम प्रभावित होयें दूसरों से?

तो यंत्र, तंत्र और मंत्र में तफ़ावत क्या है, ये पूछा गया है एक प्रश्न। मैं जो कहूं इसका जिम्मेवार मैं हूं; आप पर उसका कोई दायित्व नहीं है। यंत्र सदैव रजोगुणी होता है। अपवाद होता है। ध्यान देना, वचन को अंतिम मत समझ लेना, प्लीज़। यंत्रसाधना रजोगुणी ही हो सकती है। इसमें भी सात्त्विक हो सकती है। अपवाद है, विकल्प है। और तंत्रसाधना बहुधा तामसी ही हो सकती है। इसमें भी अपवाद

है, विकल्प है। तंत्रसाधना सदैव बहुधा तामसी ही रहती है। यंत्रसाधना बहुधा अक्सर ज्यादातर रजोगुणी रहती है। और मंत्रसाधना कभी-कभी तामसी भी होती है; राजसी भी होती है। लेकिन जिसने पूछा है उस मेरे श्रावक को मैं कहना चाहूं, हरिनाम की साधना न तामसी होती है, न राजसी होती है, न सात्त्विकी होती है। केवल, केवल गुणातीत होती है। इसलिए कलियुग में हरिनाम। तो तंत्र, मंत्र और यंत्र तीनों प्रकार की साधना है, अवश्य। सभी साधना का लक्ष्य तो दो ही होता है मेरी समझ में, या तो सिद्धि या तो शुद्धि। आपका लक्ष्य क्या है? आप सिद्धि चाहोगे तो सिद्धि मिलेगी। आप शुद्धि चाहोगे तो शुद्धि मिलेगी।

हम चर्चा कर रहे हैं, सब कुछ माँ है। अथर्वशीर्ष; देवी अथर्वशीर्ष भगवान वेद का एक बड़ा सुंदर सूक्त है। उसका आरंभिक भाग मैं लिखकर आया हूं। मैं चाहूंगा माँ के इन पवित्र उपासना के दिन में मैं और मेरे श्रोता उसका उच्चारण करें। माँ के चरणों में हमारी तोतरी बोली समर्पित करें। वेद कहता है, भगवती श्रुति कहती है भगवती के बारे में, पराम्बा के बारे में-

ॐ सर्वे वै देवा देवीभुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति।

सभी देवताओं ने मिलकर अथर्ववेद में, माँ के सन्मुख जाकर कहा, 'कासि त्वं।' हे पराम्बा, हे देवी, आप कौन हैं? 'महादेवीति', हे महादेवी, आप तत्त्वतः है कौन? अब माँ विंध्यवासिनी, जगदम्बा, पराम्बा जो भी नाम देना चाहो वो जवाब देती ही है-

सा ब्रवित् अहं ब्रह्म-स्वरूपिणी।
मतः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत्।
शून्यं च अशून्यं च।

माँ बोली, मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूं। ये सब प्रकृति और पुरुष जो है, सब मेरे द्वारा निर्मित है। मैं उसकी सृष्टि हूं, मैं ही उसकी कर्ता-धर्ता हूं। मैं शून्य हूं और मैं अशून्य हूं। गज़ब का सूत्र है! जो अखिल है वो एकदेशीय नहीं होता, सर्वदेशीय होता है। माँ अखंडित है। इसलिए कहती है, शून्य भी मैं हूं, अशून्य भी हूं। अशून्य मानी पूर्ण। शून्य मानी रिक्त। और वर्तमान जगत के दार्शनिकों को १२०० साल पहले के २५०० साल पहले के दो अवतारों को मैं आपके सामने पेश करूं तो माँ कहती है, शून्य के रूप में बुद्ध भी मैं हूं और पूर्ण के रूप में शंकराचार्य मैं हूं।

हरिः ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेववशिष्यते।।

शंकर पूर्ण की बात करते हैं। बुद्ध शून्य की बात करते हैं। और मुझे तो अच्छा लगता है, पंडितों ने कहा कि ये प्रच्छन्न बौद्ध है। शंकराचार्य बौद्ध मत के विरोधी नहीं हैं लेकिन छिपे बौद्ध हैं; ऐसा वो कहते हैं। ये प्रच्छन्न बौद्ध है। दोनों एक तत्त्व में इस ब्रह्मस्वरूपिणी माँ में समाहित हैं। शून्य भी मैं, अशून्य भी मैं। बहुत प्यारा स्तोत्र है। ये तो अद्भुत है। व्याख्या करने की भी ज़रूरत नहीं। केवल एन्जोय करने की ज़रूरत है। व्याख्या क्या करें? हम भाष्यकार थोड़े हैं? भावकार हैं। भाष्यकार तो जगद्गुरु हैं; महापुरुष हैं।

देवतागण पूछे, आप कौन हैं माँ? तो शून्य भी मैं, अशून्य भी मैं; पूर्ण भी मैं, अपूर्ण भी मैं। राम क्या है? शून्य भी है, रिक्त भी है। राम कौन है? दुर्गा है। राम शून्य है, बिलकुल शून्य है। शास्त्र आधार है। और शास्त्र न भी हो तो भजन प्रभाव। राम नवमी तिथि को प्रगट होते हैं और हमारे संतगण कहते हैं, नौ का अंक शून्य है। रिक्त तिथि मानी जाती है। नवमी तिथि को कोई सत्कर्म नहीं करता। शून्य तिथि माना, रिक्त। किसी ने मुझे पूछा है, नवमी तिथि को इतनी अपमानित क्यों की? क्योंकि नवमी तिथि को खाली ही रखनी पड़ती है; कोई गड़बड़ न करे। क्योंकि मेरा ठाकुर आनेवाला है। जगह रखो; खाली करो मैदान। ये विराट पुरुष, विश्वमानुष अवतार लेने के लिए आया है। और हमारी कौशल्या भी 'मानस' की दस विद्या में एक देवी है। वो कहती है-

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर थिर न रहै।।

कोई बड़ा वी.आई.पी. नेता, कोई बड़ा राष्ट्रनायक आता है तो एरपोर्ट दूसरे जहाज़ों के लिए बंद नहीं कर दिया जाता? रिक्त रखो, खाली रखो; बिलकुल कोई वहां न आये। ये प्रोटोकोल है। मेरा राम आया तब पूरे विश्व में प्रोटोकोल लग गया था। खाली रखो दुनिया। इस तिथि में कोई करम-बरम किया तो गये! बस, निगाहें ऊपर रखो; अवतरण होनेवाला है; कोई आनेवाला है। इसलिए नवमी तिथि रिक्ता है। और नवमी तिथि पूर्णांक भी है। जो गणित संतों ने सुनाया कि नौ नौ ही रहता है। ये तलगाजरडी भाष्य है।

शून्यं च अशून्यं च।
अहं आनंदा आनंदौ।

इसका मतलब मैं आनंद भी हूं और मैं अ-आनंद भी हूं। कोई उदास बैठा है तो उसकी उदासीनता में भी मैं हूं और कोई आनंद में झूम रहा है तो उसके ठुमके में भी मैं हूं। आनंद, अ-आनंद। मेरा वेद कहता है, माँ कहती है आनंद भी मैं हूं, अ-आनंद भी मैं हूं।

अहं विज्ञाना-विज्ञाने।

यानी विज्ञान भी मैं हूं, अविज्ञान भी मैं हूं। गज़ब का स्तोत्र है! जानकार भी मैं हूं, न जाननेवाली भी मैं हूं। इसका मतलब है कि कोई पंडित ये न समझे कि मुझ ही में माँ है। लेकिन माँ कहती है, जो मूढ़ है, नहीं जानता है, उसमें भी मैं हूं। इसलिए पंडित यदि मूढ़ का इन्कार करे तो मूढ़ का नहीं करता है, महा माँ का करता है। क्योंकि दोनों वोही तो है। विज्ञान भी मैं, अविज्ञान भी मैं।

अहं ब्रह्मा-ब्रह्मणी वेदि-तव्ये।

अहं पंच भूतान्य-पंचभूतानि।

अहं अखिलं जगत्।

आखिर में कहती हैं, अखिल जगत मैं ही हूं। यहां मेरे सिवा कुछ नहीं। तो ये पराम्बा के कुछ श्लोक। बहुत बड़ा स्तोत्र है। मैंने इतना ही लिया। बहुत है ये हमारे लिए तो।

'रामचरितमानस' क्या है? सभी वाङ्मय जगत का सार है। इसलिए गोस्वामीजी कहते हैं, 'सार अंस संमत सबही की।' सारांश है ये, अर्क है, निचोड़ है, जूस है। एक 'मानस' का पाठ करो, सभी शास्त्रों का पाठ हो जाये साहब! श्रुति, पुराण, स्मृति हर ग्रंथ। 'मानस' का पाठ क्योंकि 'मानस' स्वयं देवी है।

सदगुन सुरगन अंब अदिति सी।

तुलसी कहते हैं, समस्त देवताओं की माँ है ये 'रामचरितमानस।' तो माँ है सब कुछ। ऐसी माँ का दर्शन हम कर रहे हैं विंध्यवासिनी के इस पावन धाम में बैठकर। माँ के कुछ उग्र रूप हैं, कुछ सौम्य रूप हैं। उग्र रूप को नकारा न जाये। क्योंकि सौम्य-उग्र सब माँ है। कराल-कोमल सब कुछ माँ है। फिर भी कलियुग है बाप! मेरी राय आपने मांगी नहीं है फिर भी बिना मांगे देता हूं। कबूल करो न करो आपकी मानसिकता। लेकिन माफ़ करिएगा, मैं बिना मांगे राय देता हूं और बिना मांगे आपको मोती मिले, ये भी हो सकता है। कलियुग है बाप! मन और काल दोनों मलिन है हमारा। एक तो काल प्रभाव है हम सब पर और मन भी हमारा मलिन है।

माँ के चरणों में कह रहा हूं, मुझे आपकी तरह मानव बने रहने देना, प्लीज़। मुझे बताया गया कि एक 'मोरारि बापू चालीसा' लिखी गई। प्लीज़, बंद करो। मेरी कोई चालीसा नहीं हो सकती, नहीं मेरा कोई स्तोत्र। मैं आपके समान एक आदमी हूं। इन्सान को इन्सान रहने दो यार! किसी का अच्छा भाव होगा। किसी का हृदय का भाव होगा, मैं समझता हूं। लेकिन ऐसा प्रचार नहीं होना चाहिए साहब! मेरे सूत्रों को आप काव्यात्मक रूप दे तब तक ठीक है कि मैं जो बोला हूं उसको आप कविता में डाल दें; वो आपकी मर्जी हैं।

'हनुमानचालीसा' मात्र एक मेरे हनुमान की ही हो सकती है। दूसरा न कोई। और ध्यान देना, 'हनुमानचालीसा' बिलकुल आदि-अनादि चालीसा है। मैं भिक्षा मांग रहा हूं। मुझे कोई बताओ कि साढ़े चार सौ-पांच सौ साल के आसपास तुलसी हुए हैं। और तुलसी ने 'हनुमानचालीसा' तब लिखा इससे पहले कोई चालीसा लिखी गई हो तो प्लीज़, मुझे जानकारी दें; मैं आपका ऋणी रहूंगा। सब चालीसाएं तुलसी के बाद आई है। कुछ चालीसाएं तो आखरी पचास साल में ही आई है! कल तो मेरे नाम का स्तवन लिखा जाएगा और भोली प्रजा उसका पाठ करेगी! राम को भजो। हां, मेरे वक्तव्य को ज़रूर सुनो। व्यक्ति को मत पकड़ो। ये तो व्यासगादी विशाल है। यहां तो शंकर की परंपरा से सब चले आते हैं। समय होता है, चला जता है। कोई दूसरा आता है। दुनिया में क्या होता है, उसके बाद कौन? दुनिया के हर क्षेत्र में उसके बाद कौन, हो सकता है। अध्यात्म क्षेत्र में उसके बाद कौन, ऐसा हो ही नहीं। कोई न कोई माई का लाल आ ही जाता है। रिक्त रहती ही नहीं कोई गादी। तुषारभाई की एक कविता आई है।

जितना सीखा वो सब भूला,
रहा याद बस केवल माँ।
मुक्ति का मैंने जब पथ पूछा
तो कहा गुरु ने केवल माँ।

तो बाप! माँ के दरबार में हम सब बैठे हैं। मैं आपको बिना मांगे राय देता हूं। आपने पूछा नहीं। माँ के कुछ उग्र रूप है। और कुछ सौम्य रूप है। मेरी स्मृति में जितना है, बताऊं। भवानी, ये पराम्बा का सौम्य रूप है।

जंह सब संभु भव सो कासी सेवय न कसन।
जरत सकल सुरबृन्द विषम गरल जेहि पान।।

माँ का सौम्य रूप। भगवान शंकर तो विष पी गये। लेकिन अब यहां (गले) रखा है तो कभी-कभी विष तो अपना स्वभाव दिखाता होगा न! एक मीठी चीज़ आप खाओ तो एक-दो घंटें तुम्हारे गले में मीठापन रहता है। कोई कटु स्वाद आप पी लो तो कम से कम आधे घंटे तक तो तुम्हारे गले में कटुता रहेगी; कड़वेपन का असर रहेगा। ये तो कालकूट विष पिया मेरे महादेव ने, तो निरंतर कटुता। कभी-कभी उसको जब पीड़ा होती थी न तो पार्वती से कहते थे, भवानी जरा गला दुःख रहा है। तब ये काशी निवासिनी भवानी कुछ नहीं

करती थी। मर्यादा तो मर्यादा है। शिव के वामांक में बैठनेवाली भवानी कुछ नहीं करती थी। नीलकंठ के गले के सामने सौम्य दृष्टि से एक निगाह करती थी और महादेव के गले का दर्द बंद हो जाता था। ये है सौम्य रूप। भवानी का रूप सौम्य है। गौरी, महागौरी सौम्य रूप है। ये बिलकुल सौम्य रूप। हिमवती, जो माँ का एक नाम है। हिमवती सौम्य रूप। पार्वती सौम्य रूप है।

पारबती सम पति प्रिय कोउ।

पार्वती रूप सौम्य है। गौरी रूप सौम्य है। हिममती रूप सौम्य है। भवानी रूप सौम्य है। काली, चामुंडा, आदि-आदि 'मानस' में कुछ नाम है वो उग्र रूप के नाम हैं। बाकी 'मानस' में सब सौम्य रूपों की स्थापना है। 'मानस' एक मंदिर है। उसमें प्रत्येक देव-देवियों की स्थापना है अपनी-अपनी जगह पर।

मैं निवेदन करूंगा मेरे भाई-बहन, माँ की उपासना करनी हो तो, ये मन भी मलिन है, काल भी मलिन है ऐसे में उसके सौम्य रूप की उपासन करना। ये बिन मांगे मेरी सलाह है। करना न करना आपकी मौज। क्योंकि हमारी औकात नहीं कि हम उग्र स्वरूप को पचा सकें। शंकर भगवान नहीं पचा पाये थे उग्र रूप। और पति है; भवानी तो पत्नी है। लेकिन शंकर भगवान उसका उग्र रूप नहीं पचा सके। माँ के सौम्य रूप की पूजा पाठ करना, उपासना करना। कोई समर्थ गुरु मिल जाये, कोई पहुंचे हुए महापुरुष हो, अनुष्ठानी हो और वो उग्र स्वरूप की आराधना करे तो ये उसका निर्णय है। काली उग्ररूपा है। बगुलामुख उग्ररूपा है। भैरवी उग्ररूपा है। महाकाली उग्ररूपा है। कूष्मांडा उग्ररूपा है। ये कुछ जो माँ के रूप हैं ये बहुत उग्र रूप हैं। और मुझे कहने दो प्लीज़, जो सत्य है कहने दो, ये बलि जो चढ़ाया जाता है वो केवल उग्ररूपा देवी को चढ़ाया जाता है, सौम्य देवी को नहीं। बलि प्रथा जो आई है उसमें उग्ररूपा को ही बलि चढ़ाया जाता है। कभी भवानी को किसी ने बलि चढ़ाया? नहीं हो सकता। महागौरी को बलि चढ़ाया? नहीं। ये माँ का वात्सल्य रूप है। लेकिन जो-जो उग्ररूपा देवी की बातें हैं वहां बलि की बात है। मुझे लगता है कि अब ये आउट ओफ डेट हैं। अब इसमें संशोधन होना चाहिए। इससे समाज को बाहर आना चाहिए। मुझे माफ़ करियेगा। लेकिन उग्र तपस्या में ये सब बताया गया है तो! ठीक है, छोड़ो यार! लेकिन काल बहुत आगे बढ़ चुका है।

मैं फिर विनम्र भाव से प्रार्थना करूं कि शास्त्रों के नियम पर भी कुछ कड़क निर्णय हों उस पर आज के युग में पुनः विचारणा होनी चाहिए। मूल पकड़कर नये-नये फूल खिलाने चाहिए। कब तक हम नरवेध, पशुवेध करेंगे? कब तक देवस्थान को हम रक्तरंजित करते रहेंगे? इससे बाज़ आओ। हम सबका ये दायित्व है। मैंने पहले दिन भी बहुत सविनय बिनती की थी। हमारे देवस्थान इससे बाहर आये। मेरी जनता, मेरा प्यारा देश, मेरा ये समाज। और चलो, तुम माँ को तो पूछो कि माँ हम तुझे बलि चढ़ायें? ये माँ बोले कि हां चढ़ा, तो मैं चढ़ जाऊं! उसको बोलने दो। वो तो कहेगी कि नहीं। ये ग्रामीण जनता को कहां पता कि कहां कौन प्रकार की विधि है? उसको हम समझायें कि नहीं, नहीं, नहीं। देश में स्वच्छता अभियान चल रहा है। ये भी एक स्वच्छता अभियान है। मैं तो विनम्र प्रार्थना करता हूं। इससे हम बाहर आयें।

जगद्गुरु शंकराचार्य की 'सौन्दर्यलहरी' पढ़ो। कोई बिलग ही संदेश देगी। ये भी माँ की उपासना है। एक बिलग ही मेसेज मिलेगा हम सबको। और अभी 'देवी अथर्वशीर्ष' का हमने छोटा-सा शुरूआत का पाठ किया। क्या संदेश है? रहा होगा किसी काल में। ऐसी प्रथा को बंद करने से जो पाप लगे, मैं आपसे झोली फैला कर कहता हूं कि वो पाप मुझे दे दो। मैं सभी पाप मेरे सिर पर लेने को तैयार हूं। लेकिन हम इससे बाहर निकलें। 'शूलेन पाहिनो देवी-पाहि खड्गेन चाम्बिके।' अब माँ को इसी रूप में स्तुति करो कि हे माँ, जगत के शूलों से हमें बचा। जगत के इस युद्ध मैदान में हमें शांति प्रदान करें। इसकी ज़रूरत हैं।

तो कुछ उग्र रूप है, कुछ सौम्य रूप है। बहुत फेरफार हुआ है पूरे देश में। नहीं है ऐसी बात नहीं। लेकिन मैंने बहुत-से शक्तिपीठ में कथा की है तो कहीं-कहीं ऐसा मिलता है। और तो हम क्या कहें? जनता जागृत हो। ग्राहक कम हो जाये तो सप्लाइ अपने आप बंद हो जाएगी। शास्त्र जगाते हैं। और मैं नहीं समझता कि सब इस पक्ष में हैं। जहां हो रहा वो सब भी दुखी हैं कि हम क्या करें? बड़े दुःख के साथ तर्क आता है कि परंपरा को इस झटके से कैसे मिटाई जाए? खैर, छोड़ो! कोई बकरे को चढ़ा दे तो बकरा क्या बोलता है? मुझे तो खबर नहीं, क्या हालत होती होगी? तो बेचारा बकरा तो 'मैं मैं' करता है न! ऐसे ही बोलता होगा। इसका मतलब तो सीधा संदेश है कि बकरे को काटना नहीं है, अपने 'मैं' को काटना है; अपने अहंकार को काटना है। अपना 'मैं', अपना अहं माँ के चरणों में समर्पित कर वही 'मैं' का रक्त देकर हमें विरक्त होना है। हम सब मिलकर ऐसा कुछ करें।

तो बाप! उग्ररूपा है कुछ स्वरूप। और मूल में तो ऐसी बात है कि ये जो दस महाविद्या है; एक-एक विद्या से एक-एक अवतार का प्रागट्य हुआ है। मूल अवतार का प्रागट्य एक-एक विद्या से हुआ है। काली ये प्रथम विद्या है। तारा ये दूसरी विद्या है। काली जो विद्या है, महाविद्या उससे भगवान कृष्ण का प्रागट्य हुआ है मूल में। एक-एक महादेवी जो महाविद्या है उस से दसों अवतार प्रगटीकरण की बात हमारे ग्रंथों में मिलती है। तो काली से हुए भगवान कृष्ण और तारा से हुए भगवान राम। राम का अवतार मूल पराम्बा तारा से प्रगटीकरण। दसों देवियों की दसों विद्या से दसों अवतार की गणना हमारे यहां आई है। ये महाविद्या मीन्स एक ही सत्य को दसों दिशाओं से देखने का उपक्रम है।

तो एक है काली जिसको हमने कल शतरूपा की स्मृति में उसकी चर्चा की। आज है तारा। और तारा के स्वरूप में जो पंक्ति हमने भूमिका के रूप में ली है, ये दूसरा पार्वती रूप है जिसको तारा भी कहते हैं।

देबि पूजि पद कमल तुम्हारे।
सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।।
उभय बीच श्री सोहई कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।

तो दूसरी महाविद्या का नाम तारा है। तारा से राम का प्राकट्य मूल में बताया। और जिसकी आराधना से सुर मुनि सब सुखी हुए। नर सुखी हुए। और राम के प्रागट्य के हेतु में तो ये सब है न। 'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।' सबके कल्याण के लिए, सबके सुख के लिए। अवतार के कारण में कही न कहीं परोक्ष-अपरोक्ष ये संदर्भ जुड़ जाते हैं। तो ये दूसरी महाविद्या तारा। सौम्य स्वरूप माना गया है। कभी-कभी भीषण स्वरूप की भी कई ग्रंथों में झलक मिली है। लेकिन ज्यादातर व्यासपीठ उसी पक्ष में है कि तारा भी सौम्य स्वरूपा है। वहां से राम का प्रागट्य होता है।

तो देवी को उभय के बीच में रखने का मतलब। हम सब गृहस्थ हैं। हमको ज्यादा पता लग जाएगा। एक कमरा है। एक बाहर परसाल है। अथवा तो एक ही कमरा है। सोपान, सीढ़ी है। और आंगन है। चलो, मान लिया 'देहरी दीपक न्याय' जो संस्कृत का है कि एक दीप को आप आंगन में न रखे, कमरे में न रखे; देहरी पर रख दो, उमरे पर रख दो तो दोनों जगह प्रकाश। माँ सदैव बीच में रहती हैं। माँ ब्रह्म को भी प्रकाशित करती हैं, मीन्स ब्रह्म को प्रगट करती है। ब्रह्म को भी प्रकाशित करती है और हम जैसे जीव को भी प्रकाशित करती है। 'दीव' धातु से ही 'देवी' शब्द बना है। और उसका अर्थ है प्रकाशित होना, प्रकाशित करना, उजाला करना। ये देवी का मतलब। देव और देवी की उत्पत्ति तो प्रकाशतत्त्व माना गया है; जो हमें उजागर करे; जो हमें प्रकाशित करे; जो हमें दीप्त बनाये। तो बीच में माँ है। ब्रह्म को भी जगत में प्रस्थापित करनेवाली माँ हैं। और जीव को भी ब्रह्म के मार्ग पर चलाने के लिए वो ही लीड करती है कि बच्चा मेरे कदमों में चला तो ब्रह्म तक पहुंच जाएगा।

तो मातृतत्त्व सदैव बीच में। बाप-बेटे में तकरार होती है तो मध्यस्थी ज्यादातर माँ कर लेती है। माँ बीच में। जगदम्बा कायम 'उभय बीच' रही है। एक अर्थ में कहूं तो देवी का मार्ग; ठीक है वाम मार्ग माना जाता है तंत्र में कि वाम मार्ग द्वारा उसकी उपासना। न लेफ्टिस्ट है; न राईटिस्ट है; भगवती देवी बिलकुल मध्यम मार्ग है। और ये मध्यम मार्ग को ज्यादा प्रकाशित किया तथागत बुद्ध ने। जो एक मिड़ वे, जो मिडल पाथ बनाया मध्यम मार्ग। माँ सदैव मध्यम मार्गी होती है। बीच में रहती है। और जिसमें श्रीपना हो, जिसमें कान्ति हो, जिसमें आभा हो, जिसमें प्रभा हो, जिसमें श्री हो; 'श्री' ऐश्वर्यमूलक शब्द भी है। जिसमें ऐश्वर्य हो। फिर लौकिक ऐश्वर्य, अलौकिक; तुम्हारे पास, हमारे पास जो भी श्री तत्त्व हो। धन के रूप में भी श्री मानी जाती है। ऐश्वर्य के रूप में, पद के रूप में, प्रतिष्ठा के रूप में, बल के रूप में। श्री के कई अर्थ मिलते हैं। जिसके पास जो श्री रूप में हो उसको चाहिए समाज के मध्य में रहे। कोई दीन-हीन है उसको ही भी प्रकाशित करे श्रीवान लोग। श्रीवान आदमी उसको भी ऊपर उठाये। और एक ओर सत्तावान, सम्पत्तिवान हो उसको भी कहे कि तुम भी मर्यादा में रहो। ऐसे मातृ हमेशा बीच में रहती है।

माँ की उपासना करनी हो तो उसके सौम्य रूप की उपासना करना। काली उग्ररूपा है। बगुलामुख उग्ररूपा है। भैरवी उग्ररूपा है। महाकाली उग्ररूपा है। कूष्मांडा उग्ररूपा है। ये कुछ जो माँ के रूप हैं ये बहुत उग्र रूप हैं। और मुझे कहने दो प्लीज़, ये बलि जो चढ़ाया जाता है वो केवल उग्ररूपा देवी को चढ़ाया जाता है, सौम्य देवी को नहीं। कभी भवानी को किसी ने बलि चढ़ाया? नहीं हो सकता। महागौरी को बली चढ़ाया? नहीं। ये माँ का वात्सल्य रूप है। लेकिन जो-जो उग्ररूपा देवी की बातें हैं वहां बलि की बात है। मुझे लगता है कि अब ये आउट ओफ डेट हैं। अब इसमें संशोधन होना चाहिए। इससे समाज को बाहर आना चाहिए।

विंध्य सत्य है, गंगा प्रेम है और विंध्यवासिनी करुणा है

'मानस-श्री देवी', जिसकी सात्त्विक-तात्त्विक संवादी चर्चा हम कर रहे हैं। आज मेरे पास कथा के संदर्भ मे इतनी जिज्ञासायें हैं कि पढ़ने में काफी समय चला गया। मैं कोशिश करूंगा माँ की कृपा से, सद्गुरु की कृपा से मेरी समझ और समय के अनुकूल आपसे बातें करूंगा मूल विचार को केन्द्र में रखते हुए। एक प्रश्न तो ये है, 'बापू, प्लीज़ बतायें कि तीनों देवी-माँ यहां जो विराजमान हैं, माँ अष्टभुजा, माँ कालीखोह एवं विंध्यवासिनी माँ, ये तीनों में व्यासपीठ की दृष्टि से सत्य, प्रेम और करुणा किस रूप में विराजमान है? हमें समझायें। कौन-सी माँ सत्य है? कौन-सी माँ करुणा है? एवं कौन-सी माँ प्रेम है?- आपकी कथा का एक फ्लावर।'

यद्यपि वो कथा दो साल पहले अश्विन नवरात्र में, गुजरात में माँ का एक धाम है चामुंडा माँ, चोटीला; वहां जब कथा थी तब 'मानस-चामुंडा' विषय चुना गया था। तब व्यासपीठ ने कहा था। जैसे यहां मैंने पहले दिन से शुरू किया है कि मेरा बस चले तो मैं ये कहता तो रहता हूं, हो भी माँ की कृपा से तो बहुत अच्छा कि-

या देवी सर्वभूतेषु अहिंसारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

तो वो सूत्रपात चोटीला की कथा में हुआ था माँ की कृपा से। लेकिन उस कथा में मैंने कहा था कि-

या देवी सर्वभूतेषु सत्यरूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु प्रेमरूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु करुणारूपेण संस्थिता।

ये तीनों सूत्र की चर्चा तलगाजरडी दृष्टि से की गई थी। ये माँ के जो तीन स्वरूप यहां विराजित हैं, ये तीन सत्य, प्रेम और करुणा के ही स्वरूप है साहब! आप माँ की स्तुतियों में देखें तो श्रद्धारूपेण, क्षमारूपेण, शांतिरूपेण।

किं वरणयां तव रूपमचिन्त्य मे तत। ऋषिरोवाचः। - 'दुर्गा सप्तशती।'

ऋषि हार कबूल कर रहा है कि हे माँ, मैं तेरे रूप का कैसे वर्णन करूं? क्योंकि अचिन्त्य है। चिंतन में भी नहीं आता। कथन में तो बहुत कठिन है। तो कई रूप है। सत्यरूप, प्रेमरूप, करुणारूप। क्या नहीं है माँ में? लेकिन आपने पूछा है तो मैं जरा हटके जवाब देना चाहता हूं कि माँ तो करुणामूर्ति है, माँ तो सत्यमूर्ति है, माँ तो प्रेममूर्ति है। उसमें कोई सिद्ध करने की ज़रूरत नहीं। स्वतः सिद्ध है। मेरे शब्द में नहीं है, मार्कंडेय की इस पूरी स्तुतियों में उपलब्ध है। लेकिन आपने पूछा तो मैं ये कहना चाहूंगा कि यहां विंध्य सत्य है। सबसे पहले सत्य तो विंध्याचल है, जो अचल है। लेटने के बाद आदमी कभी उठा नहीं। उसकी शरणागति सत्य है। गुरु ने कहा कि जब तक मैं न लौटूं तब तक उठना मत। तब से विंध्य लेटा हुआ है। इसलिए गुरु के वचन सत्य है और विंध्याचल की शरणागति सत्य है। मैंने दो-तीन बार आपको बिलग-बिलग कथा में कोई संदर्भ मिला तो कहा है कि विंध्य ऊपर उठने लगा था। और जब आदमी ऊपर उठने लगता है तब उसको थोड़ा गुरूर तो आता है। मेरे 'मानस' में एक सूत्र है-

नहीं कोउ अस जनमेउ जग माहिं।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहिं।।

प्रभुता पाने के बाद मद न आये ऐसा तो इस वसुधा में, इस विश्व में कोई पैदा ही नहीं हुआ। गोस्वामीजी का अकाट्य वचन। ऊपर उठना, गर्व से ऊपर उठना सत्य नहीं है, ध्यान देना। कोई गर्व से ऊपर उठे, क्या वो सत्य है? मोरारिबापू उसको सत्य सिद्ध करने जा रहा है! कैसे होगा ये? लेकिन जब आदमी को किसी भी क्षेत्र में किसी भी प्रकार की ऊंचाई मिल जाये, तो

कोई सद्गुरु की शरण में जाकर उसको प्रणाम करे और गुरु के वचन को स्वीकार कर उसमें कोई विकल्प खड़ा न करे; तो उठा हुआ झुक जाए, वो सत्य है। अब ऊपर क्यों उठ रहा था? इतना ऊपर उठा तो उसको लगा कि ये सूर्य को अब मेरी परिकम्मा करनी चाहिए। देखो, आदमी जब बहुत ऊंचाई प्राप्त करता है तो चाहता है, सब मेरे सामने झुके। सब मेरी परिकम्मा करे। सब मेरी वाह-वाह करे। ये चाह होती है। उसने देवताओं तक कहा कि ये सूरज को हुक्म करो अब मेरे चारों ओर घूमें। पितामह आदि ने कहा, विंध्य, बच्चा, ये प्रकृति का नियम है उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। पूरा संसार सूर्य की परिकम्मा करे। सूर्य हमारी परिकम्मा करे ये नहीं हो सकता। अब तो सूरज को दबाने चला। पूरे संसार में अंधेरा कर दूं। मुझे रोक रहे हो और मेरी मानते नहीं! तो मैं इतना ऊपर उठ जाऊंगा कि पूरे जगत में अंधेरा कर दूंगा। अंधेरा मानी अज्ञान, तमस। अंधेरा स्थापित करना चाहता है।

कुछ समय के लिए मिली कुछ ऊंचाई समाज में आदमी को बधिर कर देती है। अब करे क्या? महाराज कुंभजजी को, अगस्त्य ऋषि को प्रार्थना की, महाराज आप कुछ करो। आप कृपा करो। और गुरु आया तो इतना अच्छा लग रहा है कि इनको इतना तो भान रहा कि गुरु आया तो झुकना चाहिए। वरना सत्ता आने के बाद गुरुओं को भी कौन झुकता है? लेकिन ये आदमी मुझे ठीक लग रहा है कि इतनी ऊंचाई के बाद भी, सारे संसार में उसने अंधेरा तक कर दिया फिर भी गुरु आया तो झुका। और जैसे गुरु के चरण में दंडवत् किया और दंडवत् करते ही कहा, भगवन्, मेरे लिए क्या आदेश? अरे बेटा, मैं एक काम से जा रहा हूं यात्रा पर। जब तक मैं आऊं न उठना मत। मैं जल्दी मैं हूं बच्चा। उठना मत। साहब! तब से विंध्यगिरि लेटा है। एक अर्थ में सोचे तो ये गुरु ने होशियारी नहीं की? आने के लिए कहा, कभी लौटे नहीं। इसका मैं अर्थ करूं, एक बार साधक शरणागत हो जाता है फिर गुरु को आने की ज़रूरत नहीं। गुरु का काम वहां पूरा हो गया। वहां इति हो गई। वो पा गया। वो पहुंच गया। क्या आज्ञांकित! ये विंध्याचल की चरणधूली हम सिर पर लें। माँ भी तो वहीं ही बिराजमान होगी न कि जहां ऐसी विनम्रता हो, वहां ऋजुता हो, सुकोमलता हो। जहां अहंकार न हो। लेकिन गुरु कभी खेल नहीं करता। गुरु कभी किसी को छलता नहीं।

वैदघरना वाटेलां ओहड नहीं समझाय।
एने भरोसे रहेवाय।

गुरु कोई भी निर्णय करे आश्रित को चाहिए कोई विकल्प खड़ा न करे। 'बोले सो निहाल' बस। 'मानस' का क्या सूत्र है?-

सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न विषय कै आसा।।

गुरु के वचन में विश्वास। अब ऊपर से देखें तो लगता है कि गुरु ने बेचारे को छला! लेटाकर चला गया! आया नहीं अभी तक। लेकिन सत्य क्या है विंध्याचल का? मैं क्यों आपके प्रश्न का जवाब देने के लिए ये एक दूसरे संदर्भ से जवाब दे रहा हूं? इसलिए कि गुरु ने, कुम्भज ऋषि ने ऐसी करुणा कर दी, ऐसा सत्य उद्घाटित कर दिया कि तू गुरु के चरण में लेट गया तब तुम्हें सूर्य परिकम्मा करने आये ऐसी कभी जिद्द नहीं करनी। सूर्यवंशी राम तेरी परिकम्मा करेगा। चित्रकूट विंध्य है। और वहां भगवान राम परिकम्मा करते हैं; माँ किशोरीजी परिकम्मा करती हैं। जीवाचार्य लक्ष्मणजी परिकम्मा करते हैं। सूरज परिकम्मा करे ये तो घाटे का सौदा है। मूल तत्त्व तेरी परिकम्मा करे ऐसी ये करुणा थी। और राम कौन है? राम है सत्य। और जब राम विंध्याचल आये, चित्रकूट आये, भगवान राम जब चित्रकूट में तेरह साल तक परिकम्मा करते हैं विंध्याचल की। तेरह साल। तो विंध्य के मन में कहीं सुख समाया नहीं। क्योंकि बिना जप-तप किये मुझे बड़ाई मिल गई! ये विंध्याचल के भाग्य को देखकर कैलास, मेरु सब पर्वत, बड़े-बड़े पर्वत विंध्य की सराहना करने लगे; विंध्य की बड़ाई करने लगे। मेरी दृष्टि में विंध्य सत्य है। प्रेम है भगवती गंगा, जो बह रही है। वो प्रेम है।

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा ।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा ।।

और भक्ति मानी प्रेम। गंगा मानी प्रेम। गंगा की धारा भक्ति है। प्रेम के उत्कट रूप को ही भक्ति सूत्रों के महानुभावों ने भक्ति कहा है। तो ये गंगा प्रेम है। और विंध्यवासिनी करुणा है। ये माँ करुणा। ये तो हम उसके सामने कठोर हो गये हैं, बात ओर है! माँ कहती है, बेटा, तेरे पास फूल न हो तो भी चलेगा; तू तेरे सिर मुझे झुका दे। लेकिन हम तो बलि चढ़ाने लगे! ये करुणा के सामने कठोरता का प्रयोग, ये पूजा हो सकती है; ये प्रेम नहीं है। ये पूजा है, प्रेम नहीं है। अवश्य पूजा, जो जिस तरह बलि का विधान है वो चलता जो हो! उसमें ये पूजाविधि का एक अंग माना गया है। लेकिन प्रेम तो नहीं है। ये अष्टभुजा, चतुर्भुजा, अष्टादसभुजा माँ की

जितनी-जितनी भुजाओं का वर्णन है। ये माँ के अचिन्त्य रूप हैं। कितने रूप गाऊं! ये सब रूप हैं। इन सबकी पूजा करो लेकिन पहले प्रेम करो। प्रेम करने की जो वृत्ति आ जाएगी तो हिंसा छूट जाएगी; हिंसक आक्रमकता निकल जाएगी।

व्यासपीठ का एक सूत्र है, प्रेम चतुर्भुज से नहीं होता; प्रेम द्विभुज से ही होता है। चतुर्भुज की पूजा होती है। मैं आपको एक बात खानगी में बताऊं! नारायण को चार भुजा है। लक्ष्मीजी को भी चार-चार भुजाएं दिखाई गई हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूं, लक्ष्मी नारायण को कभी प्रेम करते तुमने देखा है? वो भी योगनिद्रा में सोया है! और लक्ष्मीजी भी लगे कि अब बिलकुल सो गई तो पैर दबाते-दबाते खबर नहीं, चपला कहां घूम आती है! कभी इसके घर में लक्ष्मी आ गई, कभी इसके घर में आ गई, कभी इसके घर में! किसी की नहीं हो पाती! प्रेम कहां? दो हाथवालों से प्यार होता है। चार हाथवालों की पूजा होती है। पूजा करनी चाहिए। इन चार हाथ, इन सबकी इज्जत करनी चाहिए। जो देवरूप है उसकी पूजा करो, करनी चाहिए। लेकिन उसी के अंश, जो दो-दो हाथवाले मानव जगत है, उससे प्रेम करो। इस जगत के साथ प्यार करो; उसके साथ महोब्बत करो।

मैं तो आज के संदर्भ में ये कहने के लिए सब बोल रहा हूं कि आदमी दो भुजा से प्यार करना चुक जाता है। घर में जो माँ बैठी है, घर में जो बेटी बैठी है, घर में जो बहन बैठी है और घर में जो पुत्रवधू बैठी है, ये सब को दो-दो हाथ है। पहले वहीं से शुरू करो। ये है सीढ़ी। दो भुजा से शुरू करके अष्टभुजा तक जाओगे तब माँ अपने आप करुणा बिना बोले बहा देगी। एक फार्मूला निभाओ यार! और पूजा बहुत सस्ती है। कुमकुम चढ़ा दो। एक सड़ा-बड़ा कोई फल चढ़ा दो। मुरझाए हुए कुछ फूल चढ़ा दो। पूजा बहुत सरल है। प्रेम बहुत कठिन है साहब! प्रेम करना बहुत कठिन है। प्रेम करनेवाला तो एक ही पंक्ति गायेगा, जो मुझे बहुत प्रिय है।

तुम मुझे भूल भी जाओ तो ये हक़ है तुमको।
मेरी बात ओर है मैंने तो महोब्बत की है।

तो मेरे भाई-बहन, ये तीनों रूप करुणा मूर्ति हैं मेरी समझ में। हम कठोरता पेश कर रहे हैं। हम जटिल हो कर जा रहे हैं। आक्रमकता लेकर पूजा कर रहे हैं। इससे हम लौट जायें। ये मैं कहता रहूंगा। मेरी कोई सुने न सुने। लेकिन मुझे तो तसल्ली होगी न मैंने माँ की कृपा से, उससे हिम्मत पा कर दुनिया के चौक में डंके की चोट पर कहा था कि बलिप्रथा बंद हो।

तो आपने पूछा सत्य, प्रेम, करुणा। सत्य है विंध्य; अचल। सत्य अचल होता है। फिर उसमें हिलना-डुलना नहीं। क्या तुलसीदासजी उसको न्याय देते हैं। 'श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई।' विंध्याचल के मन में आज कहीं सुख नहीं समाता। आज मेरे सामने इन्द्रादि देवता गौण हैं क्योंकि कोई भी साधना किये बिना, लेटे-लेटे मेरे चारों ओर सत्य घूम रहा है। मुझे घूमना नहीं पड़ा है। ये है सत्य। और जब हम सत्य की बात करते हैं तो हमारे पास जो तुलना करने का एकमात्र उपाय है वो सूरज है। कैसा सत्य? सूरज जैसा सत्य। सत्य की तुलना सूरज के साथ हम करते रहते हैं।

आपने पूछा है तीनों, लेकिन मैं फिर से बुनियादी बातें करूं कि ये तीनों रूप प्रेम स्वरूप हैं; तीनों रूप करुणा स्वरूप हैं। तीनों रूप सत्य स्वरूप हैं। सत्य खींचता है। प्रेम खींचता है। करुणा खींचती है। किसी की आंखों में करुणा देखोगे तो तुम स्पीड में जाते हुए भी रुक जाओगे कि माजरा क्या हैं? क्योंकि करुणा एक चुम्बकत्व है; जीव को खींचेगी। आज विंध्यवासिनी ने हम सबको खींचा है इसलिए हम आ गये। ये खींच रहा है उसका सत्य, उसका प्रेम, उसकी करुणा। आपने पूछा है तो इसका पहला और अंतिम जवाब तो यही है कि तीनों सत्य है, तीनों प्रेम है, तीनों करुणा है।

एक युवक ने मुझे पूछा, 'बापू, मैं अपना रास्ता भटक गया हूं। नौकरी भी करता हूं। लेकिन छः मास से बिलकुल समझ में नहीं आता है कि इस दुनिया में कोई अपना भी है कि कोई मेरा मुझे लगता ही नहीं है! क्या हो गया मुझे कि मेरा कोई नहीं लग रहा। मार्ग बताएं। एक-दो मिनट के लिए आपको मिलना चाहता हूं।' दो मिनट नहीं, मैं आपको चार घंटा देता हूं व्यासपीठ पर बैठने के बाद। आपका कोई नहीं, मोरारिबापू तुम्हारा है। खुश रहो बाप! तुम्हारे साथ मेरे देश की, मेरे ऋषिमुनियों की व्यासपीठ है। तुम्हारे साथ माँ विंध्यवासिनी है। काहे को रो रहे हो? दो मिनट नहीं, रोज चार-चार घंटे सुनो। चार-चार घंटे दे रहा हूं आपको। आपके साथ 'रामचरितमानस' है, भगवती है, माँ गंगा है। अकेले क्यों हो? युवानों को जरा भी डिप्रेस नहीं होना चाहिए। क्यों उदास होते हो? ऐसी कायर बोली भूल जाओ, मेरा कोई नहीं लगता! तुम्हारा पूरा राष्ट्र है। सब तुम्हारे हैं। हम सब एक-दूसरे के हैं। स्वच्छता अभियान तो साधुओं ने युगों से शुरू रखा है। आज हम सब को उसमें जुड़ना है। राष्ट्र स्वच्छ हो। हमारे तीर्थ अंदर से तो पवित्र है ही। पवित्र न हो तो उसको तीर्थ कौन कहे? परिपूर्ण पवित्र

होते हैं तीर्थ लेकिन उपर से हम उसको अस्वच्छ कर देते हैं। ये व्यासपीठ क्या है? स्वच्छता अभियान है युगों से। हमारी ये सब पीठें स्वच्छता अभियान ही कर रही हैं। 'द्विषो जही' 'अर्गला स्तोत्र' में आया। 'द्विषो जही', ये स्वच्छता अभियान नहीं है तो क्या है? 'अर्गला स्तोत्र' पराम्बा का। उसमें ये चार मांग की है-

महिषासुर प्राणाशी भक्तानां सुखदे नमः
रूपं देही जयं देही यशो देही द्विषो जही।

हमारे भीतर के दोषों को निकाल दे। स्वच्छता अभियान 'अर्गला स्तोत्र' ने किया। ऋषियों ने किया है। और मौका मिल जाता है तो बोल लेता हूं। गांधी जयंती आ रही है इस सप्ताह में; हो सके तो, कोई जबरदस्ती नहीं, एक-एक पेअर तो खादी खरीदना। खादी पहनो। कितने गरीब लोगों को रोज़ी मिलती है! गांधीजी ने कहा, खादी वस्त्र नहीं है, विचार है। लोगों कहते हैं, खादी बहुत महंगी पड़ती है; फट जल्दी जाती है। कितने गरीबों का चरखा, कितनों की रोज़ी चलती है! किसी ने ये अभियान चलाया हो उसमें मैं नहीं जुड़ा हूं। हमें कोई विज्ञापन नहीं करना है। मेरी पूरी व्यासपीठ खादी पहनती है। मेरी पोथीजी, ये खादी का वस्त्र होता है। हमारे रामजी मंदिर और जहां-जहां, इस पंडाल ऊपर ध्वज फ़हर रहा है वो भी खादी का ही होता है। और मैं स्वयं खादी ही सालों से पहन रहा हूं। खादी ही। मैं आपको जबरदस्ती नहीं कहूंगा लेकिन कम से कम कथा में आओ तो एक दिन तो खादी पहन कर आओ। सोचो। व्यापारियों को ऐसी योजना बनानी चाहिए। दाम जो लो। किफ़ायत दाम रखना। लेकिन ऐसी योजना बनाओ कि कोई तीन कुर्ते-पायाजामे का कोटन का कपड़ा ले रहा है तो एक कुर्ता-पायजामा खादी का फ्री। कुछ योजना बनाओ। फिर धीरे-धीरे लोगों को आदत हो जाएगी। ये गांधी का चरखा एक आर्थिक क्रांति का सुदर्शन चक्र बन सकता है।

मैंने कभी मेरे प्रवचन में तीन चक्र की बातें कही थी। एक गांधी का चक्र, दूसरा कृष्ण का सुदर्शन चक्र और हमारे राष्ट्रचिह्न में रहा राष्ट्रीय चक्र, अशोक चक्र। ये तीन चक्र हमारा भारत का मानदंड है। हम सुदर्शन चक्र से शांति की उद्घोषणा करते हैं; सु-दर्शन। मुझे तो मूल त्रिपुर सुंदरी ये जो तीसरी विद्या है जिसके साथ मैं सुनयना को जोड़ना चाहता हूं। मूल तो यही अपनी बात है। तीसरी महाविद्या त्रिपुरसुंदरी। और 'मानस' में जो दस महाविद्या है इसमें तीसरी महाविद्या है जनक धर्मपत्नी सुनयना। सु-दर्शन, सु-नयना। सुदर्शन ये पहला चक्र। हम भारतीयों ने दुनिया को कभी द्वेषदृष्टि से देखा नहीं। सुदर्शन किया। हमारी आंखें सुदर्शन करती रही। फिर एक अहिंसा का चक्र आया बुद्ध कालीन समय में जिसको हम अशोक चक्र कहते हैं। और फिर गांधी ने यरवडा चक्र दिया, एक तीसरा चक्र। जिन्होंने एक आर्थिक उन्नति करने में सहयोग दिया। विदेशी कापड़ का सविनय जब बायकाट किया गया गांधी के द्वारा। जो विलायत की मीलों से आता था कपड़ा उसके लिए सविनय विरोध किया। उसकी अवेजी में तो कुछ देना था, तब आया येरवडा चक्र कि तुम कांतो, तुम खादी पहनों। संपन्नों को चाहिए थोड़े खादी के कपड़े भी पहने। मैं कोई विज्ञापन करने नहीं आया। मैं सालों से बोल रहा हूं। ये हमारा सहज प्रवाह है। मेरे कमरे में ही सब खादी-खादी होती है। एक स्वभाव बन गया है खादी। मैं दबाव नहीं डालता।

मेरे श्रोता इतना करें यार! हां, स्वच्छता अभियान। खादी अभियान। अभक्ष्य भक्षण न हो किसी के घर में; किसी पूजापाठ के नाते भी न हो। अपेय हो वो जहां तक संभव हो त्यागा जाये। न पीने की चीज़ न पीयें। मेरे युवान भाई-बहन, मैं तो तुम्हारे लिए घूम रहा हूं।

युवक, डिप्रेस मत हो। दुनिया में मुझे कोई अपना नहीं लगता, ऐसा मत सोच। व्यासपीठ तेरी है। चिंता मत कर। 'भगवद्गीता' तेरी है। कोई भी सद्ग्रंथ, मुझे कोई आपत्ति नहीं। जो तुम्हें सद्प्रेरणा दे ऐसा कोई भी सद्ग्रंथ। सब तुम्हारे हैं। बेटे, हारना मत। ऐसे मेरी व्यासपीठ स्वीकार करती है। सबको अपनाओ। भले-बुरे कैसे भी हो। राम ने क्या किया? यही तो किया राम ने। अहिल्याओं को स्वीकारा। केवटों को स्वीकारा। चट्टानों को स्वीकार किया। बंदरों को स्वीकारा। ऋषि मुनियों को। सबके स्वीकार की यात्रा ये रामराज्य की यात्रा है।

तो मेरा क्या कहना है कि आप लोग हमें रूखी-सूखी रोटी नहीं, घी में डुबो-डुबो कर के फुल्के खिलाते हो। सही घी के लड्डु खिलाते हो और दुनिया के चौक में यदि डिमडिम घोष, सत्य का उद्घोष न किया जाये तो हमें लगता है, हम अपना दायित्व चुक रहे हैं। इसलिए मैं आखिरी दिन तक कहता रहूंगा कि ये बंद हो। क्योंकि ये दायित्व है। आपकी रोटी खा रहे हैं हम। ओर हो न हो मुझे तो एक तसल्ली होगी कि हमने अपना काम किया; समाज को एक आवाज़ तो दी थी। किसी ने न सुनी, अनसुनी कर दी वो और बात है। मेरी बात भूल भी जाओ तो ये हक है तुमको। मेरी बात ओर है कि व्यासपीठ ने तो तुमको महोब्बत की है।

'बापू, आपके कथा पंडाल के उपर राष्ट्रीय ध्वज फ़हरता देख एक गर्वपूर्ण अनुभूति हुई। आप बदलते समय के साथ नवीन प्रासंगिक रीति-नीति अपनाने के हिमायती हैं। बापू, आपको राष्ट्रीय संत भी कहा जाता है। ऐसे में यह सभी के लिए अत्यंत गौरव की बात होगी कि कथा का आरंभ अथवा अंत राष्ट्रगान के साथ हो।' आपने सुझाव दिया है। यहां गत कथा जूनागढ में 'मानस-रुखड़' थी। तब से ये उपक्रम मेरी व्यासपीठ ने शुरू करवाया। खादी की एक ध्वजा तो उपर फ़हरती ही रहती है और वो भी 'सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।' के रूप में। ये मुझे अच्छा लग रहा है। लेकिन राष्ट्रगीत गाने का एक नियम है। सबको खड़ा होना पड़ता है। जो हमारे व्यवस्थापक होते हैं, चढ़ाते हैं, तब एक सलामी और राष्ट्रगान कर लेते हैं।

प्रश्न है, 'वो कौन सा नाम है जो केवल एक बार लेने से ही मुक्ति मिलती है? और 'मानस' में किसे एक बार नाम लेने से मुक्ति मिली है? कृपया समझायें।' वो नाम दूसरा कोई नहीं है, रामनाम है। ये रामनाम है। ये रामनाम है। और 'मानस' में एक बार बोला और मुक्ति मिल गई, उस आदमी का नाम है रावण। एक बार जीवन में बोला-

कहाँ राम रन हतौ प्रचारी।

जब इकतीसवां तीर लगने को था, जीवन में पहली बार और अंतिम बार रावण बोला कि राम कहां है? और ऐसा कह कर गिरा तुरंत उसकी समस्त चेतना उड़कर राम में विलीन हो गई। और ये आदमी निर्वाण और मुक्ति को प्राप्त कर गया। वो नाम है राम। और एक मात्र आदमी जो जीवन में एक बार बोलनेवाला है रावण।

'बापू, अंतःकरण प्रमाण समझ में आता है। लेकिन ये भजनप्रमाण आप कहां से लाये? और इसके पीछे क्या आशय है?' ये व्यक्तिगत अनुभव की बात मैं कर रहा हूं। उसको मैं सार्वजनिक तौर पर नहीं लागू करना चाहता। ये तो जिसका अनुभव होगा; क्योंकि मेरी समझ में भजनप्रमाण सर्वश्रेष्ठ है। वो कैसे समझ में आये? धीरे-धीरे जिसके आप उपासक हो, आपके मन में जिसके प्रीति हो उसकी स्मृति अखंड बनने लगे। तैलधारावत्, निरंतर; और निरंतरता जब आ जाती है, हमें पता न चले ऐसे हमारा जप हमारा सुमिरन बन जाये। पहले जप फिर सुमिरन फिर भजन। आखिरी जो मुकाम है उसको मेरी व्यासपीठ भजन कहती है। और आधार है मेरे पास तुलसी की चौपाई-

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई।
जब तव सुमिरन भजन न होई।।

जप इतने करो बाप! समय के अनुसार। अपना दायित्व भी निभाओ। अपने घर का काम, ओफिस का काम, खेत खिलहान का काम, अपना जो दायित्व हो, छोड़कर नहीं। सब निभाते-निभाते जब मौका मिले। एक समय ऐसा आता है कि जप जब पक जाता है। कैसे मैं समझाऊं?

मैं नागार्जुन का आश्रय लेना चाहूंगा। बौद्ध परंपरा का एक बड़ा दार्शनिक, रसायनशास्त्री, बहुत उत्कृष्ट विद्वान नागार्जुन। आपने नाम सुना होगा, बौद्धकालीन। उसकी चार वस्तु से समझाने की कोशिश करूं। आम को केन्द्र में रखकर नागार्जुन समझाते हैं कि कई आम ऐसे होते हैं; आम का पेड़ नहीं, फल। जो पके हैं लेकिन दिखते हैं कच्चे। एक आम जो है वो पक गया है लेकिन दिखने में कच्चा लगता है। कई आम बिलकुल पके हुए होते हैं लेकिन उसकी छाल बिलकुल हरी होती है कि लगे कि ये पके ही नहीं। लेकिन खोलो तो अमृत बरस जाये। एक आम होता है जो पका हुआ है फिर भी दिखने में कच्चा लगता है। सूत्र दो, नागार्जुन का। एक आम ऐसा होता है कि जो है कच्चा लेकिन पक गया ऐसा लगता है। है बिलकुल कच्चा लेकिन उसका ऊपरवाला रंग सिंदूर जैसा होता है लाल-लाल कि लगे ये पक गया है। होता है कच्चा लेकिन पका दिखता है। नागार्जुन का सूत्र तीन, एक आम पका है और दिखता भी पका है। और नागार्जुन का सूत्र चार, आम कच्चा ही है और दिखता भी कच्चा है।

मैं उसको भजन के साथ जोडूं उसने कोई ख़ास फल की चर्चा नहीं की। आम की बात की। आम जनता को पच जाये ऐसी बात। सूत्र ऐसा होना चाहिए, आम हो, सरल हो, ख़ास नहीं। कई बुद्धपुरुषों का भजन ऐसा होता है पक गया लेकिन हमारे साथ-साथ बैठेगा; हमारे साथ-साथ विनोद करेगा, मजाक करेगा, बोलेगा, नास्ता करेगा। सब हमारे साथ-साथ करेगा। और तुम्हारी बुद्धि कहेगी कि उसको पता नहीं! लगता है कि अभी आम कच्चा है। आलरेडी पक गया है। लेकिन हमको लगेगा कि अरे, ये तो हमारे साथ बोलता है, विनोद करता है, हंसता है, गाता है। हम जैसे सोते हैं, सो जाता है। तो लगेगा अभी कच्चा है। पक गया वो तो कुछ दूसरी दुनिया के हो। ये दुनिया की दृष्टि ही गलत है कि जो पक गये वो कुछ दूसरी दुनिया के। नहीं, पकने की महिमा तभी है कि तुम आम संबंध छोड़ो न और तुम अंदर से पकते जाओ। तुम्हारा आम जनता के साथ रिश्ता रहे।

कोई-कोई आम बिलकुल कच्चे हो लेकिन दिखने में लगे कि ये तो पक गया है। निकले बिलकुल कच्चा; तुलसी कहते हैं-

जिन्ह के कपट दंभ नहीं माया।
तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया।।
काम क्रोध मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न दोहा।।

मुझे लगता है कि साधु की पहचान कलियुग में ये कि जिसका लिबास सरल हो; जिसका वचन सरल हो; जिसका व्यवहार सरल हो; जिसकी बातचीत का तरीका सरल हो; जिसका जीवन सरल-तरल हो। शिवमंगल सिंह 'सुमन' अद्‌भुत शायर। तो जब काव्य संमेलन में खड़े होते थे तो पंक्ति में अपना परिचय देते; वो तो उज्जैन के थे न! वहां तो क्षिप्रा बहती है-

मैं क्षिप्रा सा सरल तरल बहता हूं।
मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूं।
मुझ को तो मौत भी मार नहीं सकती,
मैं महाकाल की नगरी में रहता हूं।

सरल वेश, सरल वचन, सरल व्यवहार, सरल भोजन इक्कीसवीं सदी के साधु की पहचान होनी चाहिए। एक दूसरे को मिलने की सरलता। साधु सबको अवेलेबल होना चाहिए। हां, जब वो मिलने का समय दे तब। सबका स्वीकार होना चाहिए। तो बाप! सरल व्यवहार, सरल दृष्टि। 'देखे और दीवाना कर दे।' किसी के सामने मुस्कुरा करके थोड़ा देख ले तो सामनेवाला उसका हो जाये। कुछ करना न पड़े।

तो कई आम लगते हैं पके लेकिन अंदर कच्चे हैं। बिलकुल कच्चे। उपर पका लगता है, अंदर कच्चा होता है। कई आम होते हैं जो उपर से भी पके लगे और लगे कि भीतरी अवस्था भी परिपूर्ण पक गई है। अब तो डाल से टूटने की ही तैयारी है। पक गया। अंदर से भी लगे, बाहर से भी लगे। निरंतर किसी की स्मृति बनी रहे। और अंदर से भी लगे कि आहाहा! आदमी कहां पहुंचा है! कौन पका हुआ है? जो भीतर से भी लगे कि आदमी बहुत गहरा है। और उपर से भी लगे कि आहाहा! अन्दर से शून्य है, उपर से पूर्ण है। कोई-कोई आम जो उपर से भी कच्चे हैं। फटकिया मोती! थोड़ा धर्म का आश्रय करे; थोड़ी मुश्किली पड़े; हमने इतनी 'हनुमानचालीसा' की, कुछ नहीं हुआ! हमने इतना गायत्री मंत्र का अनुष्ठान किया लेकिन माँ गायत्री ने दर्शन नहीं दिया! सावधान, साधक, हम लोग अनुष्ठान करने के अधिकारी हैं; दर्शन देना न देना ये स्वतंत्रता जगदम्बा की है। इसलिए उसी पर छोड़ना पड़ता है। आज बहुत बड़ा ये बर्निंग क्वेश्चन है, ये जगत का सुलगता हुआ सवाल है कि जो धार्मिक है, भजनानंदी है, जो पहुंचे हुए फ़कीर है उसको बहुत कष्ट होता है। और जो पापी है ऐसे लोग मौज करते हैं! इसका यही जवाब है। गुजरना पड़ता है। इसी से निकलना पड़ता है। सूत्र चार नागार्जुन का, कुछ आम कच्चे भी दिखते हैं और होते भी कच्चे हैं। ये अच्छा है। हम कच्चे हैं और समाज के सामने कच्चे ही अपने आपको पेश करें। ये आम अच्छा है। भले ही न पके, इसका अचार बनेगा। पके तो दो-तीन दिन के बाद खत्म भी होगा। सालभर अचार रहता है कच्चे आम का। जो आम है अंदर से भी कच्चे; न कोई दंभ, न पाखंड। चार प्रकार के नागार्जुन के सूत्र। आप सोचें।

तो मेरे भाई-बहन, मैं थोड़ा गुरुकृपा से ये मेरा जो अनुभव है सो बांट रहा हूं कि भजनप्रमाण आखिरी प्रमाण है। भजनानंदी साधक कोई भी निर्णय करेगा अपने भजन साधन से ही करेगा। उसकी बुद्धि, मन सब फेंक देता है। मन क्या? बुद्धि क्या? चित्त क्या? अहंकार का तो सवाल ही नहीं वहां तक जा सके। इसलिए मैं कभी-कभी कहता हूं कि कोई बुद्धपुरुष आपको निर्णय दे वो कुबूल कर लो। भजनप्रमाण ये मेरा व्यक्तिगत निवेदन है। बाकी शास्त्र प्रमाण, अनुमान प्रमाण, अंतःकरण की प्रवृत्ति प्रमाण ये सब महत्त्व के है ही।

मेरी दृष्टि में विंध्य सत्य है। प्रेम है भगवती गंगा, जो बह रही है। वो प्रेम है। और भक्ति मानी प्रेम। गंगा मानी प्रेम। गंगा की धारा भक्ति है। प्रेम के उत्कट रूप को ही भक्ति सूत्रों के महानुभावों ने भक्ति कहा है। तो ये गंगा प्रेम है। और विंध्यवासिनी करुणा है। ये माँ करुणा। ये तो हम उसके सामने कठोर हो गये हैं, बात ओर है! माँ कहती है, बेटा, तेरे पास फूल न हो तो भी चलेगा; तू तेरे सिर मुझे झुका दे। लेकिन हम तो बलि चढ़ाने लगे! ये करुणा के सामने कठोरता का प्रयोग, ये पूजा हो सकती है; ये प्रेम नहीं है। ये पूजा है, प्रेम नहीं है।

परमतत्त्व आकाश से भी उदार होता है

'मानस-श्री देवी' में जो पंक्ति हमने भूमिका में ली है ये पंक्ति 'मानस' में कुछ परिवर्तन के साथ दो बार आई है। 'अयोध्याकांड' में भी प्रभु का वन में जो पथदर्शन है और 'अरण्यकांड' में भी। गोस्वामीजी ने 'मानस' में कई पंक्तियों में कुछ-कुछ परिवर्तन करके पुनरुक्त किया है। कहीं अर्धाली पुनरुक्त हुई है। कहीं पूरी पंक्तियां। तो ये पंक्ति दो बार आई है। साहित्य के कुछ दोष है उसमें ये भी है पुनरुक्ति दोष लेकिन ये सार्वभौम नहीं माना जाये। कई वस्तु जगत में ऐसी हैं जो बार-बार पुनरुक्त करने से ही फलित होती हैं। किसी व्यक्ति, किसी प्रसंग, किसी घटना, अपने इष्ट अथवा तो अपना बुद्धपुरुष अपने सद्‌गुरु की बार-बार स्मृति ये दोष नहीं है। ये भजन का मार्ग है। स्तुति को बार-बार दोहराने से स्तुति का भक्ति में रूपांतरण हो जाता है। ऐसा शास्त्रीय न्याय भी है। तो कोई कवि कोई भी भाषा में कविता का सृजन जब करता है तो उसकी बार-बार आवृत्ति करनी ही पड़ती है। तभी तो उसका आनंद आता है। तो वो पुनरुक्ति दोष नहीं है। ये स्वाभाविक है। इससे फल मिलता है। हम 'रुद्राष्टक' बार-बार गाते हैं। शक्ति के उपासक शक्रादय गाते ही रहते हैं।

मेरे एक श्रोता ने लिखा है, 'बापू, जय त्रिभुवन भोलेनाथ। रामनाम जपने से आंसू आते हैं। क्या यह अच्छा अनुभव है?- बी.ए. की विद्यार्थिनी, विंध्याचलवासिनी।' ये परमतत्त्व आपको रोने का भी निमंत्रण दे दे; मुस्कुराने का निमंत्रण दे। हर तरह से वो पुकारता है हमें। ओशो का एक वक्तव्य मुझे बहुत बड़ा प्रिय लगा, 'मैं तुम्हें प्रवचन देन के लिए थोड़ा आया हूं? मैं तुमको पुकारने के लिए आया हूं।' बड़ा प्यारा वक्तव्य है। ओशो की अच्छी बात हो वो तो किसी भी साधक को कुबूल करनी चाहिए। अपने पूर्वग्रहों से तुम गालियां दो तो ओशो का कुछ बिगड़ने वाला नहीं है। हां, सब बातों से मैं भी सहमत नहीं हो सकता। मेरी भी अपनी रीत होती है न! मेरा अपना ठुमका है। लेकिन जो कुछ बातें महिमावंत हैं उसको कैसे आप ठुकरा सकते हो? मैं तो नाम लेकर बोलता हूं। मैंने तो ओशो के नाम एक कथा कही 'मानस-नृत्य।' कोई साहस तो करे! अपनी खिड़कियां खुली रखो। जहां से शुभ मिले ले लो। दरवाजे बंद मत रखो। पूर्वग्रह और संकीर्णता के कैदी मत बनो। आदमी मुक्त होना चाहिए।

तो बेटी, तुमने पूछा कि रामनाम जपने से आंसू आते हैं ये अच्छा अनुभव है? बेटा, अच्छा अनुभव है। और मैं तो कहूं, जपते-जपते जब बहुत आंसू आये तो जपना भी छोड़ दो; आंसू को एन्जोय करो। क्या ये भावदशा महत्त्व की नहीं है? हिमालय की यात्रा पर जाओ और हिमालय के धवल शिखर को देखकर तुम्हारी आंखें डबडबा जाये तो चित्र खींचने में जल्दी न करो, इस लम्हें को एन्जोय कर लो। माँ विंध्यवासिनी के दर्शन करने जाओ अथवा तो कहीं भी, लेकिन तसवीर खींचने में हम भूल जाते हैं! तो पहाड़ों में हो रही है कथा। सबका अपना-अपना आनंद होता है। आप कल्पना करो, तुम्हारी कितनी समस्या का हल करती है रामकथा! बेटी, तुम्हें रोना आता है ये अच्छा है। जप करते-करते आंसू आये तो जप रूपी वृक्ष के फल लग गये हैं। आंसू है फल। मीरां गाती है-

अंसुवन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई।
मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।

आंसू तो सम्पदा है साधकों की। तो ये अच्छा है बेटा। अस्तित्व पुकारता है। न वहां कोई भाषा का भेद है, न कोई जाति का भेद है, न कोई कौम का भेद है, न कोई मज़हब का भेद है, न कोई ग्रंथों का भेद है।

ये विंध्यवासिनी के पास जाओ तो आप कहना, तुम्हारे जो इष्टदेव हो, हे माँ, मेरे इष्टदेव वो है उसके भजन में मुझे बल देना। माँ राजी होकर कहेगी, जा बेटा, तेरी साधना में मैं बल देती हूं। ये नहीं कहती कि तू मुझे ही भज। परमतत्त्व आकाश से भी उदार होता है। संकीर्णों को परम नहीं कहा जाये; वो पामर है। पामर और परम का बहुत अंतर है। कोई सच्चा बुद्धपुरुष मिलेगा तो आपकी रुचि की साधना बताएगा। आप कहेंगे कि भगवान शिव की भक्ति, तो वो कहेगा कि तू उसी को भज। मुझे माताजी की भक्ति, तू उसी को भज। कोई कहे कि मैं अल्लाह को मानता हूं, तो भज। क्यों रोके? मैं जिसस को मानता हूं तो जा, उसको भज। मैं बुद्ध को मानता हूं। क्योंकि सभी सयाने एक मत।

कबीरा कुआं एक है पनिहारी अनेक।
बर्तन सब न्यारे भये पानी सब में एक।

आजकल तो क्या हो गया है कि सब अपने-अपने ग्रूप में सबको खिंच रहे हैं, हमारी कंठी बांधो! 'जय सियराम' मत बोलो! ये क्या तमाशा है? धर्म की ग्लानि तथाकथित धर्म ही करता है। अधर्म धर्म की ग्लानि कर ही नहीं सकता। अंधेरा सूरज का क्या बिगाड़ सकेगा साहब! अंधेरा अधर्म है मानो। सूर्य धर्म है। तो अंधेरे की कोई औकात नहीं कि सूरज का कुछ बिगाड़ सके। स्पर्धा तो प्रकाश प्रकाश में होती है। अंधेरे और सूरज की कभी स्पर्धा हो सकती है? हो ही नहीं सकती। तथाकथित संकीर्ण विचारधारा, कट्टर विचारधारायें एक दूसरे को काटे जा रही हैं। कोई मुस्लिम बंदा भी माँ की शरण में जाये, क्योंकि माँ तो जानती है कि ये सब मेरे है। ये सब की माँ है, जगदम्बा है। हे जगदम्बा, जगत की माँ, तेरे यहां कोई भेद नहीं। कोई भी मज़हबवाला गंगा का गीत गा सकता है। सबको मिलाओ यारों! इक्कीसवीं सदी बहुत प्यारी है। विशेष शृंगारित करो इक्कीसवीं सदी को। ये पृथ्वी बड़ी प्यारी है।

मूल तो मैंने जो आज लिखा था वो दूसरा था लिखा था। ऋग्वेद का एक सूक्त है। भगवान ऋग्वेद में एक देवीसूक्त है। उसका एक मंत्र मुझे ज्यादा प्रिय लगा तो मैंने लिख लिया। ऋग्वेद के मंत्र का उच्चारण करें। माँ की भूमि, उन्हीं का सूत्र। गंगा बहती है। पवित्र नवरात्र चल रहा है। माँ के दर्शन के लिए लाखों लोग यहां आ रहे हैं, जा रहे हैं। जो बातें हैं। आइये, पहले मैं बोलूं फिर आप बोलें। माँ कहती है ऋग्वेद उक्त सूक्त में-

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि।

आपको ये पता होना चाहिए ही कि शंकर भगवान भी धनुष धारण करते हैं। शिव के कई रूप में ये पिनाकपाणि है। महादेव को हम पिनाकपाणि कहते हैं। ये धनुर्धारी है, शिव भी। यहां वेदस्तुति कहती है कि माँ कहती हैं कि कौन हूं? रुद्र के हाथ में धनुषबाण चढ़ता है तब मैं ही शक्ति के रूप में चढ़ती हूं। बाकी रुद्र क्या कर सकता है? ये जो माँ का प्राबल्य है। 'काह न करहिं अबला प्रबल।' ऋषि पूछता है कि रुद्र क्यों धनुष पर बाण चढ़ाता है? तू स्वयं चढ़ती है? हां, मैं चढ़ती हूं। रुद्र को भी लगता होगा कि मैंने धनुष पर बाण चढ़ाया। ऋषि पूछता है कि ये रुद्र को बाण क्यों चढ़ाना पड़े? और तू क्यों उस पर बैठ जाती है, 'अहं रुद्राय' करते हुए? कहा कि रुद्र इसलिए धनुषबाण लेता है; क्यों? आगे की पंक्ति-

ब्रह्मद्विषे शरवे

दुनिया जब ब्रह्म से द्वेष करने लगते हैं। ब्रह्मत्व से जगत जब द्वेष करने लगते हैं तब ब्रह्म के संकेत से शिव को प्रेरणा मिलती है कि ये द्वेषी का मैं निर्वाण कर दूं। ब्रह्मत्व से जो द्वेष करता है उसका निर्वाण करने के लिए, जब ऐसी बात आती है तब शंकर के हाथ में धनुष को धारण करवा के मैं ही चढ़ती हूं। कब? जब दुनिया ब्रह्म का द्वेष करती है। मेरे भाई-बहन, ब्रह्म यानी जगत। 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म।' मैं आपसे प्रार्थना करूं, कभी भी जगत का द्वेष मत करना। वरना शंकर धनुष चढ़ाएगा। जगत के किसी भी तत्त्व का द्वेष नहीं करना। ये पूरा जगत ब्रह्ममय है। ये ब्रह्म ही जगत है।

कब भगवान शंकर धनुष लेते हैं और माँ अपनी शक्ति से इस धनुष का वो करने लगती है? जब कोई व्यक्ति ब्रह्म का द्वेष करने लगता है। ब्रह्म का द्वेष मानी किसी की निंदा न करें। नरसिंह मेहता ने उसको गुजराती में उतारा तो कह दिया-

सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे।

एक अमीबा से लेकर विश्वमानुष तक कथा सुनने के बाद बच्चों, ख़ास करके युवान भाई-बहनों, अपने मन को अनुकूल हो, न हो छोड़ो, लेकिन किसी का द्वेष न करें। किसीका द्वेष करना ये ब्रह्मांड का द्वेष है। और ब्रह्मांड का द्वेष 'ब्रह्मांड भांड़ोदरी' का द्वेष है। इसलिए तब महादेव अपने धनुष को लेते हैं तब ये ऋग्वेद के सूक्त में यें बात आ गई।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।।

माँ कहती हैं, ध्यावा मानी आकाश पृथ्वी सब में मैं ही व्याप्त हूं। इसलिए कोई निंदा करता है, द्वेष करता है तब भगवान पिनाकपाणि के हाथ में शक्ति रूप में मैं चढ़ जाती हूं और विश्व को एक नवनिर्माण प्रदान करती हूं। तो ये ऋग्वेद के सूक्त का कई श्लोक, लेकिन मैंने ये उठा लिया। तो बाप! इससे प्रेरणा मिलती है कि हम किसी का द्वेष न करें।

मेरा ऐसा समझना है, द्वेष की कोई हस्ती ही नहीं है लेकिन प्रेम नहीं है इसलिए द्वेष पैदा होता है। द्वेष तो नाशवंत वृत्ति का नाम है। परम पूज्य रामसुखदासजी कहते हैं कि नाशवंत वृत्तियों की चिंता साधकों को नहीं करनी चाहिए। थोड़ी प्रतीक्षा कर लें। ये मुझे अच्छा लग रहा। ये दो वृत्ति हैं। थोड़ा धैर्य धारण करो; दोनों चली जाएगी। इस दुनिया में वृत्तियों का कोई निश्चितपना नहीं है।

अब मैं अपना सूर जो डालूं तो कि जब कोई वृत्तियां बदलती रहती हैं; आदमी को ये करना चाहिए कि थोड़ी देर राह देखे। प्रतीक्षा करनी होती है। क्रोध आया, आप विक्षिप्त न हो। करना नहीं चाहिए। क्रोध करो तो तुम दंडी हो; तुम दोषी हैं। आ गया तो वृत्ति है, चली जाएगी। अभ्यास करना पड़ेगा इसके लिए। होमवर्क करना पड़ेगा। लेकिन वृत्ति के रूप में कामना आई। धैर्य धारण करे वो साधक।

कुछ ये कठिन है। क्योंकि हम इतने आदती हो गये हैं कि कुछ किये बिना रह भी नहीं सकते। 'गीता' ने मोहर मार दी कि एक क्षण भी आदमी कर्म के बिना नहीं रह सकता। लेकिन कृष्ण के कंधे पर बैठकर आप कृष्ण की कृपा से कुछ ओर भी देख सकते हो। ये संभव है। कृष्ण ने एक बहुत प्यारा सूत्र मैं भूल गया। मन को आत्मस्थ करने के बाद तुम चुप हो जाओ। 'न चिन्तियेत्।' किंचित् चिंतन न करो। कृष्ण ने कहा, विचार करना बंद कर दो। चिंतन न करो। चिंतन भी डिस्टर्ब है। क्योंकि कर रहा है तू। और 'तू' जहां होगा, कुछ न कुछ गड़बड़ होगी! हम विचार कर रहें तब तक आध्यात्मिक तंदुरस्ती नहीं है साहब! स्वामी शरणानंदजी कहा करते थे कि मन के निरोध की बातें मैं भी करता था लेकिन ऊब गया। मन के निरोध की बात पतंजलि भगवान ने कही है। ये एक प्रयोग है। लेकिन स्वामीजी कहते हैं कि मन का निरोध भी छोड़ दो। क्योंकि निरोध करने में तुम संघर्ष कर रहे हो। और संघर्ष तुम्हें उत्तप्त करेगा ही। एक ताप पैदा करेगा।

तो शांति कैसे हो? बड़ा प्यारा प्रयोग हैं युवान भाई-बहन। मैं आपको साधु बनाना नहीं चाहता। आप संसारी रहो हमारी तरह। हम सब एक नौका के मुसाफ़िर है। लेकिन ये सब प्रयोग तो करो! इतना पढ़ते हो, इतना इन्टरनेट का गूगल का दुनियाभर का ज्ञान तुम्हारी मुठ्ठी में है। थोड़ा ये तो प्रयोग करो! भविष्य में तुम्हारी शांति वरदान देगी। लेकिन इतना हम नहीं कर पा रहे! शांति से देखो। मन का निरोध। 'योगस्य चित्तवृत्ति निरोधः।' पतंजलि का सूत्र। स्वामीजी मुझे प्यारे लगते हैं। स्वामीजी ने कहा, निरोध बंद करो। थोड़े-थोड़े रामसुखदासजी भी उसमें सम्मत है। निरोध मत करो। हां, मन को एकाग्र करने के प्रयोग भी हैं योगसूत्रों में कि ऐसा करने से मन एकाग्र होता है। लेकिन संघर्ष है साहब! साधु संघर्ष नहीं करता।

तो पतंजलि का सूत्र है, मन का निरोध करो। पकड़ो, काबू में लो ऐसे अभ्यास से। तो फिर एक सूत्र ओर आया कि मन का निरोध न करो; उसकी उपेक्षा करो। ये नया सूत्र आया। अच्छी बात है। एक तूफानी लड़का किसी की नहीं मानता। माँ-बाप की तो नहीं मानता लेकिन ब्रह्मा का भी तो नहीं मानेगा! तो उसको निरोध कैसे करोगे? उपेक्षा करो। कूदता है; गिरता है; चौट लगती है अपने आप। बच्चों को देखना; वहीं ही सो जाएगा। बिना खाए सो जाएगा। क्योंकि थक गया। उसको रोको तो? करना क्या है? उपेक्षा करो। अनुभवी साधुओं का ये वचन

आया कि उपेक्षा करो; अनदेखी करो; जाने दो। लेकिन उपेक्षा मेरी व्यासपीठ को रास नहीं आती। किसी की भी उपेक्षा मेरे स्वभाव में नहीं। उपेक्षा ये तिरस्कार भाव है।

तो फिर एक तीसरा दर्शन आता है, न विरोध करो, न उपेक्षा करो, साक्षी बनो। ओशो कहते हैं, साक्षी बन जाओ। दृष्टा बन जाओ। पर साक्षी बनने में मेरा 'मैं' तो हाज़िर है! जाओगे कहां यार! बहुत कठिन है डगर पनघट की ये। मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं।

मैं यहां आया हूं। मुझे अवसर है। आप भी मुझे डिस्टर्ब नहीं करते हैं। तो मैंने कहा कि मुझे गंगा के तट पर शाम को घंटे-दो घंटे बिठवा दो। तो मैं बैठता हूं। तब मेरे मन में ये सब चलता है कि निरोध करूं। ये बुद्धपुरुषों कि जो बातें मैंने सुनी हैं। तो मैं अकेला ना ही माला करता हूं साहब! माला बंद, सब बंद! पाठ तो सुबह कर लेता हूं। नवरात्रि चल रही है साहब! निरोध नहीं। मैं सोचता रहता हूं कि क्या करूं, निरोध मेरे पाले नहीं पड़ता। मुझे कोई कहे, आंखें बंद कर बैठो तो मैं नहीं बैठ सकता। मेरी जो कमज़ोरी है। मैं आपकी तरह आंखें बंद करके नहीं बैठता। लेकिन जो बैठ सकते हैं, एक अच्छी स्थिति है। मैं आंख ज्यादा देर बंद नहीं रख सकता। हमें अन्तर्यामी रहना अच्छा नहीं लगता, बहिर्यामी रहना अच्छा लगता है। तो निरोध नहीं। तो उपेक्षा करें? और गंगा बह रही है इतनी पवित्र माँ निकट से; उसकी उपेक्षा करूं मैं? तो ये भी मन में बात नहीं बैठ रही है। तो फिर साक्षी बनूं? तो साक्षी बनूं तो मेरा मैंपन कूदता है कि मोरारिबापू साक्षी हो गया। तो मैंपन डिस्टर्ब कर रहा हैं मुझे। तो फिर मैंने सब कुछ करना छोड़ दिया दो दिनों से। न साक्षी होना है, न उपेक्षा करना है, न निरोध करना है। तब मुझे ये लगता है, डेढ़-दो घंटे तक गंगा की तरह मैं भी बह रहा हूं। बस, न जप करना है, न तप कहना है। हां, आंख में आंसू आये तो रो लूं। बाकी बहूं।

मेरे युवान भाई-बहन, कभी प्रयोग करना। ये तीर्थों की महिमा इसलिए है कि तीर्थों में ऊर्जा भरी पड़ी है। पढ़े-लिखे क्या कहते हैं, हर जगह परमात्मा है, विंध्यवासिनी जाने की क्या ज़रूरत? काशी जाने की क्या ज़रूरत? हां उस भमिका में तू पहुंच जाये तो बात ओर है। लोग कहते हैं मंदिर क्यों जाए? मंदिर तुम्हें ऊर्जा देता है; तीर्थ ऊर्जा देता है। गंगा बहुत ऊर्जा देती है। मैं तो इतने

सालों से गंगाजल ही पी रहा हूं। मेरी रोटी तो गंगाजल ही में बनती है। गंगा बहुत ऊर्जा देती है। गंगा गंगा है साहब! मैं तो तीन माँ से पाया हूं। मेरी माँ सावित्री माँ; उसने मुझे दूध पिलाया। गंगा मुझे अमृत समान जल देती है और ये 'रामायण' मैया मुझे अमृत का पान करा रही है। तीन माताओं के द्वारा पोषित हूं। हां, कोई ऐसी भूमिका बन जाये कि 'तीरथ सकल तहां चली आवहिं।' वहां सब तीरथ चले जायें। ये विशिष्टता है। ये हम सब के लिए नहीं। तीर्थ में जाना चाहिए; भटकाव के लिए नहीं; भटकाव थोड़ा बंद हो जाये इसलिए तीर्थ ज़रूरी है।

तो निरोध करना मुश्किल है। उपेक्षा करना ये स्वभाव मैं नहीं। और किसी की भी उपेक्षा नहीं करने की आदत हो गई है तो मन की उपेक्षा क्यों करें? बेचारा हमारा मन है। मन न होता तो सुख का अनुभव कौन कराता? दुःख का अनुभव हम नहीं चाहते, चलो। लेकिन सुख का अनुभव मन के बिना हो ही नहीं सकता। हां, इसलिए हमारी श्रुतियां कहती हैं, 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।' मन प्यारा है। तो उपेक्षा स्वभाव में नहीं है। साक्षी बनने में 'मैं' हैरान करता तब करें क्या? उसी के रंग में रंग जाओ। हर चीज में कहीं 'मैं' डिस्टर्ब करता है। कहीं अपना स्वभाव डिस्टर्ब करता है।

तो मेरे भाई बहन, माँ के दरबार में जब हम बैठे हैं; किसी एक व्यक्ति के प्रति द्वेष रखना माँ के साथ द्वेष करना है। माँ कहती है जब 'ब्रह्मद्वेष' जगत बन जाता है तब मैं शंकर के धनुष पर खुद चढ़ जाती हूं और रुद्र के हाथों से इन द्वेषासुर का नाश करती हूं; द्वेषासुर को मार देती हूं। और यही मांग स्तोत्र में की है। हे माँ, 'रूपं देही।' मुझे बहुत अच्छा लगता है। प्रैक्टिकल होओ दुनिया में। माँ से रूप मांगो। और कोई कुरूप मांगता है कि हे माँ, हमें विकलांग बना! कोई नहीं चाहता। रूप मांगा। रूप की निंदा मत करो। माँ कितनी सुंदर है! 'सौंदर्यलहरी' की माँ देखो, कितनी सुंदर है! जिसके पास रूप है उस से रूप मांगो। आंख पवित्र रखो गुरु चरणरज से। बाकी किसी में रूप हो तो ये वरदान है। मेरी माँ जानकी देखो। तुलसीदासजी ने रूप का वर्णन किया है।

सुंदरता कहूं सुंदर करई।
छबिगृहं दीपसिखा जनु बरई।।
सब उपमा कबि रहे जुठारी।

गोस्वामीजी कहते हैं, मेरी माँ जानकी पराम्बा है। आदिशक्ति है। कोई भी उपमा दो, जूठी होती है। क्योंकि किसी न किसी उपमा कहीं कालिदास ने जूठी कर दी है, कहीं फलां ने कर ली है। सब कवियों ने कहीं न कहीं उसका प्रयोग कर लिया है। उपमा जूठी हो गई! मेरी माँ को हम जूठा नहीं दे सकते।।

केहिं पटतरौ बिदेहकुमारी।

विदेहराज कन्या वैदेही को, इनके रूप को किसी के साथ तौलूं? ये तीसरी महाविद्या है त्रिपुरसुंदरी। ये सुंदर है। श्रीमन् महाप्रभु वल्लभाचार्यजी महाराज भगवान कृष्ण को देखते पूरा स्तोत्र लिख देते हैं।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं
नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।

राम की सुंदरता देखकर मेरी माताएं कौशल्या आदि राम पर तिनका लेकर तोड़ देती थी। क्या छबी है राघव की! रूप की महिमा है साहब!

चित्रकार की कला को देखो, केवल चित्र को नहीं। आंख पवित्र होनी चाहिए। शर्त ये है, आंख पवित्र हो। जिसकी आंख में माँ की उपासना भरी है। वो जिसको भी देखेगा असुंदर को भी सुंदर कर देगा; कुरूप को सुरूप बना देगा वासना आंख में न हो तो।

इसलिए तो मेरे देश का ऋषि माँ से मांगता है, 'रूपं देही।' हे माँ मुझे रूप दे। कोई साधु रूप मांगेगा क्या? लेकिन तीन प्रकार की यहां मांग है। हे त्रिपुर सुंदरी, हे पराम्बा, मुझे तीन प्रकार के रूप दे। मेरे शरीर की सुंदरता। शरीर की सुंदरता कोई सामान्य चीज है साहब! हां, कोई-कोई महापुरुषों ने अपनी आंख फोड़ डाली! किसीने अपनी आंख में मिर्ची डाल दी! ये महापुरुषों की अपनी लीला है। बाकी परमात्मा ने सौंदर्य दिया हो तो पूज्य भाव से निहारों इसमें क्या बिगड़ जाता है? तुलसी तो आफ़रीन है, कुर्बान है।

नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पदकंजारुणं।

श्री रामचंद्र कृपालु भज मन हरण भवभय दारूणं।

कैसा है राम का रूप?

कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील नीरद सुन्दरं।

पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं।।

बुद्धपुरुष की आंख किसी को देखती है उस से सीखिए। किसी का सौंदर्य देखने के बाद बुद्धपुरुष ये नहीं सोचता कि ये सौंदर्य मेरे घर में आये। ये क्या सोचता है कि ये सौंदर्य मेरे घट में आये। हम क्या चाहते हैं कि ये सौंदर्य हमारे घर में आये। उसको घट में जगह दो। तुलसी ने यही कहा-

इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनं।

मम हृदयकंज निवास कुरु, कामादि खल-दल-गंजनं।।

सौंदर्य को ये नहीं कहा कि मेरे घर में बैठो। मेरे हृदय-कंज में निवास करो; मेरे घर में नहीं, मेरे घट में विराजो। 'मम हृदय-कंज निवास कुरु।' रूप को घर में निमंत्रित नहीं किया, घट में किया। तो माँ से स्तोत्रों में मांगा गया है-

महिषासुर प्रणाशी भक्तानां सुखदे नमः

हे भक्तों को सुख देनेवाली महिषासुरमर्दिनी, हम आपसे याचना करते हैं-

रूपं देही जयं देही यशो देही द्विषो जही।

हर मंत्र में 'रूपं देही', 'यशो देही।' तो ऋषि जब मांगता है तो तीन प्रकार का रूप मांगता है। एक तन सुंदरता और एक मन की सुंदरता। 'रूपं देही जयं देही यशो देही द्विषो जही।' तो जब तलगाजरडी दृष्टि से माँ के इस स्तवन को मैं सोचता हूं तब लगता है कि शायद स्तुतिकार ने माँ कि स्तुति में कहा, मुझे रूप दो। शरीर को रूप ज़रूरी है। मुझे शरीर का भी रूप दो कि मैं तुझे भाऊं। हे प्रभु, हे माँ, मुझे रूप दे लेकिन तीन प्रकार का। पहले शरीर का रूप दे। दूसरा मन का रूप। विशेष सूक्ष्म है मन का रूप। मेरे मन का रूप मुझे मिले। मन का रूप; मेरा मन जो भी सोचे वो शुभ सोचे। सबका भला सोचे। ये मन का रूप हो गया। और तीसरा रूप, मेरी आत्मा सुंदर तो है लेकिन उस पर जो आवरण आ गये हैं उस आवरण को हटाकर हे माँ, आत्मस्वरूप का दान कर। 'रूपं देही।' शरीर का रूप, मन का रूप, आत्मा का रूप।

'जयं देही।' मुझे जय दो। आप जानते हैं मेरे स्वभाव को। मुझे 'जय' शब्द प्रिय नहीं है। किस पर विजय करनी है? किसी को हराकर विजय की जय घोषणा ये क्या ठीक है? एक प्रकार की हिंसा है। जो हार जाता है वो जरा वो होता है। किसकी जय? माँ से जय मांगा। देखो, मुझे कोई कहे कि माँ से जय मांगो तो प्लीज़, माफ़ करना, मैं जय न मांगूं। हां, मां कहे कि नहीं बेटा, मांग जय तो मैं विंध्यवासिनी को कहूं, तू देती है माँ तो मैं प्रसाद ले लूं। जय ले लूं। लेकिन माँ समझ भी दे कि ये जय मैं अकेला न रखूं, बांट दूं मेरे सम्पूर्ण जगत को जय।

हम क्या कहते हैं, 'जयहिन्द।' अच्छा सूत्र है, 'जय हिन्द','जय भारत।' कई लोगों को ये बोलने में तकलीफ़ होती है! लेकिन महात्मा गांधी के काल का एक सूत्र आया, 'जय भारत।' 'जय हिन्द।' लेकिन विनोबाजी प्रज्ञावान पुरुष है। मेरी समझ में एक बुद्धपुरुष है विनोबाजी। वो कहते थे, 'जय जगत।' पूरे विश्व का जय। विजय की खुशी हम अकेले न मनायें। विजय बांटो; जय बांटो। फिर 'रामचरितमानस' इससे भी आगे गया कि वहां 'जय हिन्द' केवल नहीं। 'जय हिन्द' अद्भुत नारा है। इसका गौरव हमें होना चाहिए। विनोबाजी कहते हैं 'जय जगत।' बहुत प्यारा। लेकिन 'रामचरितमानस' का एक तीसरा सूत्र आया है, 'जय जीव।' सुमंत जब महाराज दशरथजी के पास जाता है तो 'कहि जय जीव।' जय जीव का मतलब है जीवमात्र; जड़-चेतन प्राणीमात्र का जय। जिसके मन में ये हो कि मुझे जय मिले, मुझे उत्कर्ष मिले, मुझे तरक्की मिले तो मैं अकेला उसका भोक्ता न रहूं। हे माँ, इस जयरूपी प्रसाद को सब में बांट दिया जाए। ऐसी 'जयं देही।' अकेला जय अभिमानी बना देगा साहब! क्रिकेट में तीन बार इन्डिया जीत गया। दूसरों के पराजय पर जीतना आध्यात्मिक पुरुषों का स्वभाव नहीं होता है; मायिक जगत का तो होना ही चाहिए। मैं भी एन्जॉय करता हूं। मेरी टीम जीत गई। उसका मुझे भी आनंद है।

भगवान कृष्ण ने जब कंस को मारा है। विजय तो गोविंद की हुई। पराजय कंस की हुई। लेकिन मुस्कुराते हुए कंस ने कृष्ण के सामने देखा। बलभद्र दाऊजी कहते हैं, ये आदमी गिरा तो भी नज़र ऊठाये है! अहंकार तो देखो!

गोविंद ने कहा कि मामा, आप कुछ कहना चाहते हो? बोले, आप पूछते हो तो ये कहना चाहता हूं कि कंस विजय भी पचा सकता है और पराजय भी पचा सकता है। 'ये जयं देही।' माँ का सेवक जब ये मांगता है माँ, मुझे जय दे लेकिन मैं जय बांट दूं।

बस एटली समज मने परवरदिगार दे,

सुख ज्यारे ज्यां मळे त्यां बधाना विचार दे।

'तेन त्यक्तेन भुंजिथाः।' ये हमारी औपनिषदीय प्रकृति है। बांटो। 'रूपं देही।' 'जयं देही।' 'यशो देही।' आपको रूप मिले माँ की कृपा से। आपकी जय-जय हो जाये। और आपको जय-जयकार का यश मिल जाये; दुनिया तुम्हारी सराहना करे तब एक खतरा होता है कि उसका नशा भी आ जाये; एक अहंकार भी आ जाये। ये भी हो सकता है। लेकिन यहां जय भी बांटने की बात है। यश भी बाटंने की बात है। तो माँ ने कहा, बच्चा, तू तो सब वो कर रहा है। कुछ तो प्रसाद मांग। बोले कि एक दो, 'द्विषो जही।' मेरे दोष को तू हर ले। मेरे द्वेष, मेरे दोष निकल जाये। क्योंकि रूप का अहंकार ही बड़ा दोष है; जय का अहंकार ही बड़ा दोष है। उसके बाद मिली कीर्ति उसका अहंकार ही बड़ा दोष है। आखिर में ऋषि कहता है, 'द्विषो जही।' मेरा द्वेष तू ले ले। मेरा दोष तू लेले। मुझे उस से मुक्त कर। 'रूपं देही'; शरीर का रूप माँ दे लेकिन मेरे मन का भी रूप दे।

तन भी सुदंर मन भी सुंदर

तुम सुंदरता की मूरत हो...

ऐसी कौन हो सकती है? पराम्बा जगदम्बा देवी ही हो सकती है। जिसका मन सुंदर। तो रूप मांगना कोई बुरी बात नहीं। लेकिन थोड़ा उसकी दिशा बदले वो ज़रूरी है। एक शे'र आया है।

सुनकर जमाने की बातें

तू अपनी अदा मत बदल।

यकीन रख अपने खुदा पर

तू बार-बार खुदा मत बदल।

बार बार शरणागति न बदल। देखो भाई, आप किसी का भी सिमरन करे। सहज सिमरन जहां भी लग जाये। ये खतरा नहीं है। ये सहज भजन है। करते जाओ। कई साधक मेरे पास आते हैं कि बापू, पहले हम 'यमुनाष्टक' करते थे, आपको सुनते-सुनते 'हनुमानचालीसा' इतना सहज हो गया कि 'यमुनाष्टक' का पाठ करते-करते 'हनुमानचालीसा' होने लगती है। जो सहज हो। 'उत्तमा सहजावस्था।' होने दो; प्रयत्न मत करो। आप राम का सिमरन कर रहे और आपके सद्गुरु की आपको याद आ गई तो 'गुरु गोविंद दोनों खड़े किसको लागूं पाय।' और मैं फिर एक बार कहूं, गन्धर्वराज पुष्पदंत तो कहते हैं, 'नास्ति तत्वं गुरो परम।' गुरु से उपर कोई तत्त्व नहीं है। किसी भी वस्तु से ड़रना ये आध्यात्मिक व्यक्ति की पहचान नहीं है। क्योंकि सबसे पहली शर्त है निर्भयता। वो ही इस मार्ग में आये। बाकी नहीं। खबर नहीं, शास्त्रों में पढ़ा है। बातें होती हैं। 'मानस' में भी लिखा है; सरग-नरक की बातें हैं। लेकिन हो न हो प्रभु जाने। मैं इतना जानता हूं कि स्वर्ग आजकल विंध्यवासिनी के आंगन में है।

परमतत्त्व आकाश से भी उदार होता है। संकीर्णों को परम नहीं कहा जाये; वो पामर है। पामर और परम का बहुत अंतर है। कोई सच्चा बुद्धपुरुष मिलेगा तो आपकी रुचि की साधना बताएगा। आप कहेंगे कि भगवान शिव की भक्ति, तो वो कहेगा कि तू उसी को भज। मुझे माताजी की भक्ति, तू उसी को भज। कोई कहे कि मैं अल्लाह को मानता हूं, तो भज। क्यों रोके? आजकल तो क्या हो गया है कि सब अपने-अपने ग्रूप में सबको खिंच रहे हैं, हमारी कंठी बांधो! 'जय सियराम' मत बोलो! ये क्या तमाशा है? धर्म की ग्लानि तथाकथित धर्म ही करता है। अधर्म धर्म की ग्लानि कर ही नहीं सकता।

कथा-दर्शन

- 'मानस' एक मंदिर है, उसमें अपनी–अपनी जगह पर प्रत्येक देव–देवियों की स्थापना है।
- सबके स्वीकार की यात्रा ये रामराज्य की यात्रा है।
- परमतत्त्व आकाश से भी उदार होता है।
- 'हनुमानचालीसा' बिलकुल आदि–अनादि चालीसा है।
- प्रेम चतुर्भुज से नहीं होता ; प्रेम द्विभुज से ही होता है।
- विश्व को अब ऐसी माँ की ज़रूरत है जो वात्सल्यमूर्ति हो ; शांतिमूर्ति हो ; सुन्दर रूप हो।
- सभी साधना का लक्ष्य तो दो ही होता है, या तो सिद्धि या तो शुद्धि।
- मेरे देश को, मेरी सुंदर पृथ्वी को सिद्धों की नहीं, शुद्धों की ज़रूरत है।
- विशुद्ध उसको कहते हैं जो अंदर से भी पवित्र है और बाहर से भी पवित्र है।
- जिसके हृदय में विवेक की प्रधानता हो ऐसे महापुरुष की मन, वचन, कर्म से पूजा करो।
- एक बुद्धपुरुष के आश्रय में बैठना पांचों देव की पूजा है।
- किसी के जीवन में जो बाधक न बने वो ही मेरी दृष्टि में साधक है।
- भजनानंदी साधक कोई भी निर्णय करेगा अपने भजन साधन से ही करेगा।
- आंसू तो सम्पदा है साधकों की।
- देश–काल के अनुसार सूत्रों में संशोधन करे वो गुरु।
- गुरु कभी खेल नहीं करता। गुरु कभी किसी को छलता नहीं।
- गुरु कोई भी निर्णय करे, आश्रित को चाहिए कोई विकल्प खड़ा न करे।
- दिन में गृहस्थ रहना ; रात में संन्यासी रहना।
- हद से ज्यादा मंदिर बनाने की ज़रूरत नहीं। घर को ही मंदिर बना दो।
- मुक्ति भूमि आधारित नहीं है, भूमिका आधारित है।
- कुछ समय के लिए मिली कुछ ऊंचाई समाज में आदमी को बधिर कर देती है।

मानस–श्री देवी : ६

जिनके मन में संशय न हो और बुद्धि में विवेक हो वह देवीपद के योग्य है

कल जहां रुके थे वहीं से आगे बढ़ें। मैं आपसे निवेदन कर रहा था कि 'मानस' में कई पंक्तियां पुनुरुक्त हुई है किंचित् परिवर्तन के साथ ताकि पुनरुक्त दोष न लगे। यद्यपि कल हमने संवाद रचा कि कुछ बातों में पुनरुक्ति आवश्यक है। जैसे कि हरिनाम; जैसे कि भगवत-स्तुति; जैसे कि मैं नौ-नौ दिन कथा-गायन करता हूं। ये मंगलमय है; मंगलकरनी है। फिर भी तुलसी कहते हैं कि मैं कोई कवि तो नहीं हूं। और पुनरुक्ति करूं तो दोष लग सकता है। लेकिन मैं कवि नहीं हूं।

कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ।
मति अनुरूप राम गुन गावउँ।।

मैं कवि नहीं। मैं ज्ञानी नहीं। चतुर मानी एक अर्थ ज्ञानी भी होता है। तो आप हैं कोन? बोले, मैं तो रामगुणगायक हूं। और गायक जो होता है उसको पुनरुक्ति करनी पड़ती है। गायक की पुनरुक्ति श्रोता के दिल में कुछ प्रस्थापित कर देती है। इसलिए आवश्यक है वहां पुनरुक्ति। तुलसी कहते हैं, मैं गायक हूं। मैं कवि नहीं हूं। मैं तो संपादक हूं। मैंने तो 'रामचरितमानस' का प्रकाशन किया। तो फिर आप ही तो लिखते हैं कि मैं कवि हूं नहीं और एक बार कहते हैं कि कवि है। तो क्या समझें? बोले, कभी-कभी आदमी में लायकात न हो तो भी पदवी मिल जाती है। जो खिताबें दुनियाभर में दिये जाते हैं उसमें सामनेवाला न भी लायक हो, तो भी पदवियां दी जाती हैं! अपने-पराये देखे जाते हैं! संबंधों के आधार पर भी डिग्रियां बेची जाती हैं! है न? स्वामी शरणानंदजी महाराज को किसी ने पूछा कि महाराजजी, आप सार्थक संबंध किसको कहते हैं? स्वामीजी कहते हैं, अपनों से केवल संबंध रखे, वो सार्थक संबंध नहीं है। सबसे संबंध रखे वो सार्थक संबंध है। हमारे भगतबापू कहते हैं, अपने-अपने पक्षी को तो सब पक्षिनी अपने आशियाने में सेवती है।

पोटा सौ पोतातणां पाळे पंखीडां,
बचडां बीजानां को'क ज सेवे कागडा।

सार्थक संबंध; स्वामीजी ने तो एक टुकड़े में जवाब दे दिया। उसका विस्तार मैं कर रहा हूं। अपनों से तो सब संबंध रखते हैं; मजबूरी भी होती है; रखना पड़ता है। सबसे संबंध ही सार्थक संबंध है। एक संत का कहना है और मैं उसमें शत प्रतिशत सहमत हूं। मेरी सहमती की स्वामीजी को कोई ज़रूरत नहीं। मेरे लिए मैं सहमत हूं। थोड़ा सोचोगे, थोड़ा अनुभव करोगे तो आपको भी सहमत होना पड़ेगा। अपने ही सुखी हो ऐसा भारत का सूत्र नहीं है. 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' अपने लोग ही स्वस्थ रहे? नहीं, ये भारत का सूत्र नहीं। 'सर्वे सन्तु निरामयाः।' मैं ही सौ साल का होऊं बाकी सब पचास साल में ही तमाम हो जाये? नको। 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।' तीन बातें कहते हैं स्वामीजी। युवान भाई-बहन, दिल में रखना। जीवन के किसी मोड़ पर आपको मदद करेगा। मैं वादा करता हूं स्वामीजी की ओर से। आपको मदद करेगा। मेरा आपसे भी संबंध हो, गरीब से भी हो, तवंगर से भी हो, नागर से भी हो, गंवार से भी हो, पीड़ित से भी हो, परमानंदी से भी हो, संन्यासी से हो, गृहस्थ से हो, ब्रह्मचारी से हो, पेड़ों से हो, नदियों से हो, आसमां से हो, फूलों से हो, धरती से हो, महानदियों से हो, देशियों से हो, विदेशियों से हो। प्रत्येक के साथ। आपने कभी सोचा, मैंने कई बार कहा, शायद भूल गये हो तो पुनरुक्त कर रहा हूं। 'रामचरितमानस' का एक शब्द का मंत्र है 'सब।'

सब नर करहिं परस्पर प्रीति।

सब। जहां देखो 'सब', 'सब', 'सब' आपको मिलेगा। 'भगवद्गीता' का एक शब्द का मंत्र है 'सम।' 'समः सर्वेशु भूतेषु।' सब जगह 'सम।' निंदा-स्तुति सम। शीतोष्ण सम। सुख-दुःख सम। लोहे का टुकड़ा और सोने का टुकड़ा सम। 'गीता' के गायक को समता पर बोलने का अधिकार है क्योंकि उसने कौरव भी इतने दूर हैं, पांडव भी इतने दूर हैं; बीच में समथल पर अपना रथ रखा है। और उपनिषद का एक शब्द का महामंत्र है वो है 'सत।' उपनिषद सदैव 'सत' की चर्चा करता है। 'एक सद्।' 'असतो मा सद्गमय।' युवान भाई-बहन, एक शब्द ले लो। जिसने बीज पकड़ा उसने पूरा वृक्ष पकड़ा। पूरा वृक्ष नहीं पकड़ा जाता। बीज पकड़ना होता है। 'सत' पकड़ा तो सब उपनिषद पकड़ लिया। 'सम' पकड़ा तो पूरी 'भगवद्गीता' आपने पकड़ ली। और 'सब' पकड़ लिया तो पूरा 'रामचरितमानस' पकड़ लिया। सार्थक संबंध है, स्वामीजी कहते हैं सबसे हो, वही। जहां अपने-पराये का भेद न हो। और दूसरा, अपनी आत्मा से संबंध रखना वो सार्थक संबंध है। अपनी आत्मा से। 'निज स्वरूपानुसंधान' जिसको वेदान्त कहते हैं; आचार्य शंकर जिसको कहते हैं, निज स्वरूपानुसंधान निरंतर। सार्थक संबंध वो है जो सबसे हो; कोई पराया न हो। दूसरा, जो आत्मा से जुड़ा रहता है वो आत्मसंबंधी सार्थक संबंध है। और तीसरा, जो केवल अपने इष्ट नाम से संबंध रखता है ये सार्थक संबंध है। 'हे माँ, हे माँ, हे माँ।' 'हे हरि।' अपने इष्ट के साथ संबंध।

फिर स्वामीजी को पूछा, सार्थक चिंतन क्या है? ये प्रश्न तो बड़े कठिन माने जायेंगे। लेकिन स्वामीजी तो सरल करते हैं। तो मैं भी स्वामीजी के आशीर्वाद से ओर सरल किया करता हूं। स्वामीजी कहते हैं, सार्थक चिंतन यही है; एक तो तत्त्वचिंतन सार्थक चिंतन है। दूसरा, हरिचिंतन सार्थक चिंतन है; प्रभु का चिंतन। स्वामीजी कहे, तत्त्व चिंतन ज्ञानियों के लिए; प्रेमियों के लिए केवल हरिचिंतन। स्वामीजी कहते हैं, तत्त्वचिंतन और हरिचिंतन दो नहीं है, एक ही है। सार्थक चिंतन है या तो तत्त्व का। मेरा नरसिंह इस पक्ष में भी है।

ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चीन्यो नहीं
त्यां लगी साधना सर्व झूठी।

और वो हरिचिंतन में भी डूबा हुआ है। ये हरिचिंतन का भी इतना ही ज़िक्र करता है। स्वामीजी को एक तीसरा प्रश्न किसी साधक ने पूछा कि सार्थक प्रवृत्ति क्या है स्वामीजी? स्वामीजी कहते हैं, सार्थक प्रवृत्ति वो है जिसमें किसी का भी अहित न होता हो। जिसमें किसी का अहित हो ये प्रवृत्ति सार्थक नहीं मानी जाएगी। और कई पीठों ने यही काम किया है! मानी जाती थी खूबसूरत प्रवृत्ति लेकिन होता था सबका अहित! वरना बलि प्रथा क्यों आती?

आज किसी भाई ने मूझे लिखा है, बापू, आप कहते हैं तो बहुत मन में बात बैठती है। लेकिन ये जो बलि है उसमें जो काटा जाता है ये माँ के लिए नहीं है। ये तो हम काटते हैं इसलिए कि माँ तो नहीं खाती लेकिन उसका वाहन जो सिंह है न उसके लिए। ये तर्क है। कितने भी तर्क आप लगा सकते हो। बाकी पूरा जगत मेरी समझ मे हिंसामुक्त होना चाहिए। और ये हिंसा ऐसे ही नहीं जाएगी। जैसे अंधेरा तलवार से नहीं मिटेगा। अंधेरा आये तो लाख खड्ग लो, शमशेर लो, त्रिशूल लो, चक्र लो, गदा लो। माँ के पास कितने आयुध हैं? तो ये तर्क मुझे दिया, बहुत सुंदर दिया कि उसके वाहन के लिए काटते हैं। चलों, मैं मान लूं कि ये सिंह के लिए है। तो सिंह को खाने दो! सोचिये, समय लगेगा। मैं समझता हूं कुछ बातों को। और मैं किसी मूल को छेदन करना नहीं चाहता। लेकिन मुझे तो लगता है कि अस्तित्व अब चाहता है कि विश्व से हिंसा बंद हो। और जब धर्म के नाम से हिंसा शुरू होती है तो इससे जगत को मुक्त करना बहुत मुश्किल है। एक वस्तु याद रखना, हर एक ऋषि शिक्षक है।

तो तुलसी कहते हैं, मैं कवि नहीं। फिर वो ही तुलसी 'कवि' शब्द तो लगा देते हैं। तब उसने खुलासा किया-

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी।
रामचरितमानस कबि तुलसी।।

शंभु प्रसाद, ये शंकर की कृपा। हृदय में हुलासपना उठा और मैं शंकर की कृपा से कवि नाम से पुकारा गया। बाकी मैं हूं गायक इसलिए मैं पुनरुक्ति कर सकता हूं। और जब शंभु प्रसाद से गोस्वामीजी कवि की पदवी प्राप्त कर लेते हैं तब तुलसी भी ध्यान रखते हैं कवि के नाते कि पुनरुक्ति न हो जाये। इसलिए एक जगह लिखा-

उभय बीच सिय सोहइ कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।

वहां 'सिय' शब्द आया। यद्यपि 'सिय' और 'श्री' दो नहीं हैं; दोनों एक हैं। जो पंक्ति हमने उठाई है वो वो ही है लेकिन 'सिय' की जगह 'श्री' है; तुलसी ने लिख दिया-

उभय बीच श्री सोहइ कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।

तो कल हमने यहीं से शुरू किया था कि कई पंक्तियों में पुनरुक्ति है। कविपना जब तुलसी में दिखता है तब वो कुछ न कुछ परिवर्तन कर पुनरुक्ति से मुक्त रहते हैं। तुलसी तो कहते हैं, ये गाने का शास्त्र है। 'गावत संतत संभु भवानी।' 'गावत वेद शास्त्र अष्ट दस।' वेद-शास्त्र गा रहे हैं। इसमें पुनरुक्ति बहुत पवित्र साधन हैं।

तो बाप! तुलसी की कई पंक्तियां में जब वो कविपने में नहीं होता तो पुनरुक्त कर देते हैं। बाकी जब कविपने में होते हैं तो कुछ न कुछ करके पुनरुक्ति दोष से मुक्त हो जाते हैं। तो जिस पंक्ति को 'मानस-श्री देवी' का आधार बनाया है, उसमें दो पंक्ति ऐसी ही आपको मिलेगी कुछ परिवर्तन के साथ। तो बाप! त्रिपुरसुंदरी दस महाविद्या में तीसरी महाविद्या है। और उसको मैं जनक पाटमहिषी सुनयना के रूप में देखता हूं। सुनयना के लिए तुलसीजी ने तीन बार 'देबी' शब्द का प्रयोग किया है। हमारे लिए कोई अच्छा शब्दप्रयोग कर ले तो जल्दी राजी मत होना। पहले तलाश करना कि मेरे लिए ये शब्द बोल कौन रहा है? कोई कहे कि आप बहुत ज्ञानी हैं, तो हमको ज्ञानी कहनेवाला बोल कौन रहा है वो देखना। कोई मूढ़ भी हमारी मज़ाक करने में भी कह सकता है कि हम बहुत ज्ञानी है। कोई कहे, आप बहुत सुंदर है तो ज्यादा मुस्कुराना मत। कौन बोल रहा है वो देखना। तुम्हारी मज़ाक भी करते हो। तो बाप! कोई किस रूप में हमें ज्ञानी कह दे, जरा सावधान रहियेगा। कोई किस रूप में सुंदर कह दे! बड़े लोग होते हैं ये विनोदी बहुत होते हैं।

मज़ाक ज़िंदगी में हो ये तो कोई बात है।
मज़ाक जिंदगी से हो ये दिल को नापसंद है।
-मजबूर साहब

जीवन में मज़ाक होनी चाहिए। हल्का-फुल्का जीवन होना चाहिए। धर्म हमें इतना गंभीर बना दे वो ठीक नहीं। मैं किसी को भी मंच पर बुला सकता हूं। कई तथाकथित धर्म में आबद्ध लोगों को मेरी शैली पसंद न भी आये। और मुझे बोल नहीं सकते!

तो एक वस्तु, कोई आपको कहे, आप बहुत सज्जन है, अच्छे है। आप भीतर देखें कि मुझे जो कहा जा रहा है वो मैं हूं कि नहीं? यदि नहीं है तो वो जो बोला गया है उसको चरितार्थ करने के लिए हम सज्जन होने की प्रामाणिक कोशिश करें। और बोल कौन रहा है वो भी देखें कि वह मज़ाक तो नहीं कर रहा है! तो जीवन में विनोद; मजबूर साहब कहते हैं, कोई ऐसा मज़ाक न हो कि किसी की जान का खतरा हो जाये; ये दिल को नापसंद है।

तो जब सुनयनाजी को देवी कह रहे हैं। सुनयना तो देवी है ही, यस। क्योंकि जनक पाटमहिषी है। विदेहराज की धर्मपत्नी है। किशोरीजी की माँ है। भले किसी भी रूप में लेकिन है तो माँ और नाम भी उसका सार्थक है। सुनयना का मतलब है जिसकी आंखें सुंदर हैं। आंखें ही सुंदर नहीं, दृष्टि सुंदर है; दृष्टिकोण सुंदर है; दर्शन सुंदर है। उसके लिए 'देवी' शब्द का प्रयोग कोई करे तो ये अच्छा है। लेकिन फिर भी जांच करनी चाहिए कि देवी कौन? त्रिपुरसुंदरी को हम देवी कहें तो ये सुंदर है। त्रिपुरसुंदरी; तंत्र साधना में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा है। जितने शाक्त लोग हैं, जितने शक्ति उपासक हैं वो वहां लगे रहते हैं। त्रिपुरसुंदरी के उसके अनुष्ठान यद्यपि कठिन-जटिल होते हैं। तो सुनयना को देवी कहा। किसने कहा?

देबि तजिअ संसउ अस जानी।
भंजब धनुषु राम सुनु रानी।

जब सुनयनाजी को लगा कि शिवधनुष ये राम तोड़ पायेगा कि नहीं तोड़ पायेगा? उसको संदेह हो गया कि कहां ये शिवधनुष और कहां ये राजकुमार? ये कैसे तोड़ पायेगा? तब ये सयानी सखी जो 'मानस' का एक गोपनीय पात्र माना गया। 'मानस' में दो पात्र गोपनीय है जिसका खुलासा नहीं मिलता। एक तापस; दूसरी तपसी। एक तापस है।

तेहि अवसर एक तापस आवा।
तेज पुंज लघु बयस सुहावा।।

वो प्रसंग आया और बिखर गया; रहस्यमय! ऐसी एक गुमनाम एक सखी है 'रामचरितमानस' में, जिसको सयानी सखी कहते हैं। तुलसी कहते हैं-

संग सखीं सब सुभग सयानीं।
गाबहिं गीत मनोहर बानीं।।
एक सखी सिय संगु बिहाई।
गई रही देखन फुलवाई।।

एक रहस्यपूर्ण पात्र है मिथिला में सयानी सखी। सयानी सखी जो जानकी को लीड करती है पुष्पवाटिका में कि चलो, माताजी की स्तुति बाद में जानकी, मैं राम को दिखा दूं। वो एक तापसी सखी, सयानी सखी जो सद्गुरु की भूमिका निभाती है। पीछे-पीछे सियाजू जाती है। और राम तक पहुंचा देती है। और जानकीजी रामरूप को देखकर जब बिलकुल अंदर डूब गई। तो वो ही सयानी तापसी सखी उसको एकदम जागृत करती है कि देर हो गई जानकी, फिर कल आयेंगे। सद्गुरु की भूमिका निभा रही है। रंगभूमि में सब आ गये हैं। सुनयनाजी को होने लगा कि ये धनुष कैसे टूटेगा? अब मानो संशय का समाधान करनेवाली एक सखी आ जाती है और सुनयना को कह देती है, संशय न करो।

मुझे कहना ये है कि त्रिपुरसुंदरी की एक परिभाषा ये है। तो यहां सुनयना को मैं इसके साथ जोड़ रहा हूं तब कुछ प्रमाण हैं गुरुकृपा से। अथवा तो थोड़ी देर के लिए सुनयनाजी के मन में संशय हो भी गया तो एक तापसी सखी, एक सयानी सखी उसको फिर सावधान कर देती है कि 'भंजब धनुष राम सुनु।' हे देवी, आप देवी है; देवीपना है। तो सुनयना वो है, त्रिपुरसुंदरी वो है तीसरे प्रकार की महाविद्या। शब्द बहुत अच्छा यूज़ किया गया 'महाविद्या।' ये सामान्य विद्या नहीं हैं। उसके साधक की आंख भी पवित्र होनी चाहिए; तभी ये विद्या सफल होती है। उपासना की जगह भूल से भी वासना न आ जाये। इतनी पवित्र विद्या कहीं तथाकथित मैली विद्या न बन जाये। शक्ति उपासना में बहुत सावधानी रखनी पड़ती है साहब!

देखो, सीधा-सादा अर्थ युवान भाई-बहन कि हमारी आंख, हमारा दृष्टिकोण, हमारा नज़रिया तभी सुंदर है जब हमें किसी में संशय न दिखे। कुछ किसी में हो तो भी। एक बार संशय का कीड़ा बैठ जाता है तो 'गीता'कार का आखरी जो जजमेंट है वो सुनाई देता है, 'संशयात्मा विनश्यति।' संशयी आत्मा का आखिर अंजाम नाश ही होता है। और सती स्वरूप में पराम्बा राम ब्रह्म नहीं है कि ब्रह्म है ये संशय जब हुआ तो आखिरी दक्ष के यज्ञ में 'विनश्यति।' फिर पार्वती होना पड़ा; शैलपुत्री बन करके आना पड़ा।

मैंने तो संस्कृत-सत्र चल रहा था 'देवी-विमर्श' का तभी इस सब्जेक्ट की घोषणा की थी कि मैं अब विंध्यवासिनी की कथा में 'मानस-श्री देवी' करूंगा। तो तब मैंने खुलासा किया था; यहां श्री देवी है पराम्बा विंध्यवासिनी; पराम्बा जानकी; पराम्बा राधेजू; जो कहो। दूसरा 'देवी' शब्द का प्रयोग सुनयना से किसने किया?

कौशल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेकनिधि वल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि।।

मन में संशय न हो वो देवीपद के योग्य है। और बुद्धि में विवेक छूट न जाये वो 'देवी' शब्द के लिए योग्य है। देवी कौशल्याजी धैर्य धारण करने को कहती हैं चित्रकूट में जब सुनयनाजी बिलख गई। महाराज दशरथजी की मृत्यु और ये सब शोकमय वातावरण चित्रकूट में हुआ। रात्रि का समय है; सुनयना मिली है। तो जब बिलख जाती हैं तब कौशल्याजी ने कहा, सुनयनाजी, आप धैर्य धारण करो। हम आपको क्या कह सकते हैं? हे देवी, मिथिलेश आपके पति तो विवेकनिधि है। आपके वल्लभ; वल्लभ मानी पति। तुम्हारे जो प्रिय पतिदेव विवेक का खजाना है जो जनकराज, उसकी धर्मपत्नी आपको कौन उपदेश दे सकता है? आप देवी हैं। फिर एक पंक्ति क्या है-

देबि परंतु भरत रघुबर की।
प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी।।

वहां फिर उसको देवी कहा कि हे देवी, भरत और रघुवर की जो प्रीति और प्रतीति है उसको तर्क की फूटपट्टी से नापी नहीं जा सकती। बहुत बड़ा सूत्र है मेरी समझ में। दुनिया में किसी की भी प्रीति और किसी की प्रतीति, उसको आप अपनी बुद्धि से नहीं नाप सकते। अनिर्वचनीय है ये प्रीति और प्रतीति।

तो बाप! त्रिपुरसुंदरी का भीतरी सौंदर्य का थोड़ा कल मैंने भी जिक्र किया वो था बुद्धि का विवेक। सुनयना

विवेकनिधि महाराज की धर्मपत्नी है। और तीसरी बात, तुम्हारे मन में, तुम्हारी बुद्धि में तर्क नहीं होना चाहिए क्योंकि भरत और राम की प्रीत तार्किक न की जाये और उसकी प्रतीति भी। जो भरोसा है उसको तर्क में हम नहीं बांट सकते। तो माँ सुनयना के बारे में तीन बार 'देवी' शब्द प्रयोग करके तुलसी ने मन-बुद्धि की ओर इंगित किया है। इसलिए ये मन और बुद्धि का जो सौंदर्य है, जो त्रिपुरसुंदरी की उपासना में नितांत आवश्यक माना है इसकी चर्चा मैंने गुरुकृपा से आपके सामने की।

तो आइये, शिवचरित्र का केवल स्पर्श करते हुए रामजन्म की कथा की यात्रा करें। गोस्वामीजी ने 'रामचरितमानस' के चार घाट निर्मित किये, जिसमें ज्ञानघाट यानी कैलासघाट जहां बैठकर भगवान महादेव भवानी को कथा सुनायेंगे। तीरथराज प्रयाग के कर्मघाट पर बैठकर परम विवेकी परम प्रपन्न याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी को कथा सुनाते हैं। उपासना अथवा तो भक्ति के घाट पर बैठकर बाबा कागभुशुंडि गरुड़ को कथा सुनाते हैं। और केवल दीनता और शरणागति के घाट पर बैठकर कलि पावनावतार पूज्यपाद गोस्वामीजी अपने मन को अथवा तो संतगण को कथा सुनाते हैं। तुलसी अपनी दीनता के घाट से कथा का आरंभ करके हमें कर्म के घाट पर ले जाते हैं।

एक बार का कुंभ मेला पूरा हुआ। कल्पवास करके सब महापुरुष बिदा होने लगे। भरद्वाजजी से विदा मांग रहे हैं। तब याज्ञवल्क्य बिदा लेते हैं तो भरद्वाजजी उसको आग्रह करके रोक लेते हैं कि महाराज, मेरे मन में एक संशय है और आपको सब शास्त्र हस्तामलक हैं। महाराज, जिस रामतत्त्व की स्मृति उपनिषद बार-बार करते हैं; जिस रामनाम का सुमिरन अविनाशी शिव निरंतर करते हैं वो राम दशरथ का बेटा वो ही राम है कि वो रामतत्त्व कोई भिन्न है? परमात्म तत्त्व राम कौन है? याज्ञवल्क्य महाराज मुस्कुराये। समझ गये कि महाराज, आप राम के बहुत गूढ़ प्रेमी है। मेरे से मूढ़ जैसा प्रश्न करके आप मेरे से रामकथा सुनना चाहते हैं। आप जैसा श्रोता मिले तो मैं ज़रूर रामकथा गाऊंगा। रामकथा का द्वार है शिवकथा। पूछी रामकथा और प्रारंभ करते हैं शिवकथा से। क्या सेतुबंध कर रहे हैं! क्या ऐक्य स्थापित कर रहे हैं!

तो पहले शिवचरित्र शुरू किया याज्ञवल्क्य ने। सती को लेकर कुम्भज के पास कथा सुनने गये। लौटे। नरलीला देखकर सती को संदेह हो गया कि ये काहे का ब्रह्म है? सती परीक्षा करने गई। विफल हो गई। सीता का रूप लिया इसलिए महादेव ने सती का त्याग किया। सत्तासी हज़ार साल तक सती अकेली रही। बहुत दुःखी हुई। सत्तासी हज़ार सालों के बाद शिव जागृत होते हैं। और जगतपति जागे ऐसे समझकर सती सन्मुख गई। रसप्रद कथा सुना रहे हैं। उस समय दक्ष के यज्ञ की कथा आई। शिव अपमान सहा न गया तो दक्ष के यज्ञ में सती ने अग्निप्रवेश कर लिया। सती यज्ञकुंड में समर्पित हो गई। दूसरा जन्म शैलराज के घर शैलजा के रूप में; पर्वत के घर पार्वती के रूप में। जो केवल बुद्धि थी वो अग्नि में समाप्त हो गई और श्रद्धा प्रगट हो गई। शिव को पाने के लिए बहुत तप किया। आखिर में भगवान शिव बारात लेकर आते हैं और शिव-पार्वती का विवाह होता है। शिव के घर पुत्र का जनम हुआ कार्तिकेय का पुरुषार्थ के रूप में। ऐसे शिव एक बार कैलास के शिखर पर प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं। पार्वती योग्य अवसर देखकर शिव समीप गई। महादेव ने सन्मान दिया। वाम भाग में आसन दिया। और पार्वती प्रश्न करती है, प्रभु, मेरे मन में संदेह-सा है कि रामतत्त्व क्या है? प्रभु, कृपा करो; मुझे रामकथा सुना करके मेरे संदेह को हरो। भगवान प्रसन्न हुए। पार्वती को धन्यवाद दिया।

धन्य धन्य गिरि राजकुमारी।
तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी।।
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा।
सकल लोक जग पावनि गंगा।।

हे भवानी, आपको धन्य हो; धन्य हो। भगवान शंकर प्रसन्न हुए। परमात्मा के निराकार रूप का वर्णन किया। फिर भगवान ने अवतार क्यों लिया उसके पांच कारण 'रामचरितमानस' में बताये। फिर आखिर कारण में ब्राह्मणों के श्राप के कारण राजा प्रतापभानु रावण होता है। अरिमर्दन कुम्भकर्ण और धर्मरुचि विभीषण होता है। तीनों भाईयों ने कड़ी तपस्या की। वरदान प्राप्त किये। वरदान के बल से अत्याचार मचा दिया रावण ने धरती पर। धरती अकुला गई। गाय का रूप लेकर ऋषिमुनियों के पास गई, मुझे बचाओ। ऋषिमुनियों ने कहा कि रावण के कारण हमारा चिंतन-मनन भी छूट गया। हम क्यां करें? देवताओं के पास गये। देवताओं ने कहा, हमारे पुण्य ख़तम होने की तैयारी है। अब करें क्या? सब गये ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के पास। पितामह ब्रह्मा को अपनी पीड़ा सुनाई। ब्रह्मा ने कहा, हम सब मिलकर परमात्मा को पुकारें। ब्रह्मा की अगवानी में समस्त देवकुल, समस्त ऋषिमुनि कुल और समग्र पृथ्वी गाय के रूप में अब परम अस्तित्व की पुकार करती है। आकाशवाणी हुई, आप धैर्य धारण करो। यद्यपि मेरे अवतार के कोई कारण नहीं। फिर भी कुछ कारणों के लिए मैं अवतार धारण करूंगा और आसुरी वृत्ति को निर्वाण करके विश्व में पुनः नवनिर्माण रच दूंगा। सब लोग प्रसन्न हो गये।

गोस्वामीजी हमें लिये चलते हैं श्री रामधाम अयोध्या। रघुवंश का शासन। वर्तमान सार्वभौम सम्राट महाराजाधिराज जो वेद का प्रतीक माना गया। दशरथजी महाराज धर्मधुरंधर है, गुणिनिध भी है, ज्ञानी है। भक्त भी है। कौशल्यादि प्रिय रानियां हैं। सबके आचरण बहुत पवित्र है। रानियां महाराज को आदर देती हैं। महाराज रानियों को प्यार देते हैं। और उसका दाम्पत्य हरिभजन में बीत रहा है। मैं हर वक्त कहता हूं देश की और विश्व की युवानी को प्रसन्न दाम्पत्य की ये छोटी-सी फोर्मूला; ऐसा दाम्पत्य कि राम जैसे संतान हमारे घर प्रगट हो। केवल दो ही सूत्र और तीसरा दोनों को सम्मिलित होकर करने का सूत्र। तीन सूत्रीय फोर्मूला आदर्श दाम्पत्य कि जहां राम को जनम लेने की इच्छा हो। पुरुष पत्नी को प्यार दे, बस। स्त्री प्यार की भूखी होती है। उसको प्यार दो; उसके समर्पण में कोई कभी नहीं रहेगी। और पुरुष थोड़ा अहंकारी होता है, उसको आदर सम्मान चाहिए। उसका ईगो हर्ट न हो इसलिए उसको थोड़ा आदर दो। और दोनों मिलकर हरि-भजन करे, उसके घर राम जैसे संतान प्रगट होंगे।

महाराज दशरथ और रानियों का दिव्य दाम्पत्य था। लेकिन एक बार महाराज को ग्लानि हुई, मुझे पुत्र नहीं है। चौथी अवस्था आ गई। रघुवंश का कोई वारिस नहीं! यहां से रघुकुल खत्म हो जाएगा! लेकिन ये पीड़ा कहूं तो किससे कहूं? राजा निकले हैं गुरुद्वार। सुख-दुःख के समिध समर्पित किये। और कहा कि प्रभु, हमारे भाग में पुत्रप्राप्ति का सुख नहीं हैं? वशिष्ठजी ने कहा, राजन्, एक नहीं, चार पुत्रों के पिता हो जाओगे। पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया।

शृंगीऋषि को आचार्य पद दिया। भक्ति सहित आहुति डाली। यज्ञपुरुष अग्नि ने प्रसाद की खीर का चरु वशिष्ठजी को दिया और कहा, महाराज, दशरथजी को देना और कहियो अपनी रानियों को जथायोग्य बांट दे। अवधपति ने अपनी प्रिय रानियां को बुलाई। यज्ञ प्रसाद जो खीर के रूप में है इसमें आधा प्रसाद कौशल्याजी को; आधा शेष रहा उसके दो भाग करके पा भाग कैकेई को; पा भाग जो शेष रहा उसका दो भाग करके कैकेई और कौशल्या के हाथ से प्रसन्नता से सुमित्राजी को दिलवाया गया। तीनों रानियां सगर्भा स्थिति का अनुभव करने लगी है।

पंचांग अनुकूल हुआ; जोग, लगन, ग्रह, वार और तिथि। चराचर हर्ष में डूब गया है। हरि आने की बेला है। त्रेताजुग। चैत्र मास। नया संवत्सर। दुर्गापूजा के दिन हैं। नवमी तिथि। मध्याह्न का भास्कर है। न ठंडी, न ताप। मंद सुगंध शीतल वायु बहने लगी। सरिताओं में अमृत बहने लगा। पृथ्वी से मणियों की खदाने निकलने लगी। परमात्मा के प्रागट्य की क्षण। स्वर्ग के वो देवता, पृथ्वी के ब्राह्मण देवता और पाताल के नाग देवता भगवान की गर्भ स्तुति करने लगे। बिलकुल मध्याह्न का समय और परमतत्त्व, परमात्मा, ब्रह्म, भगवान, ईश्वर जो कहना चाहो मुबारक; उस तत्त्व प्रकाश के रूप में कौशल्या के भवन में प्रगट होता है। गोस्वामी के मुख से शब्दावली निकल पड़ी-

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी।।

कृपालु प्रगट हुए। माँ कौशल्या ने देखा, मैं किन शब्दों में स्तुति करूं? अद्‌भुत रूप का दर्शन हुआ! माँ को ज्ञान हुआ। प्रभु मुस्कुरा दिये। मैंने संतों से सुना कि इतना होने के बाद कौशल्या मुख फेर लेती है। परमात्मा ने कहा, मैं तेरे घर आया और तू मुंह फेर रही है? माँ कौशल्या ने कहा, आप पधारे, आपका स्वागत। लेकिन महाराज, आपने हमें गत जन्म में कहा था, मैं आपके घर मनुष्य के रूप में आपका पुत्र बन कर आऊंगा। न तो आप मनुष्य के रूप में हैं; नारायण रूप में आये हैं। और न तो आप पुत्र रूप में आये हैं; बाप बनकर आये हैं। मनुष्य के दो हाथ दोते हैं। आप चतुर्भुज हैं। भगवान ने द्विभुज रूप धारण किया। अब मनुष्य हो गया? बोले, मनुष्य हो गये। पुत्र का रूप नहीं है, बाप का रूप है। छोटे हो जाओ। भगवान बिलकुल नवजात बच्चे की तरह छोटे हो गए हैं। माँ ने कहा, बच्चा जब पैदा होता है तो रोता है। आप मुस्कुरा रहे हैं। आप रोओ। भगवान ने कहा कि मेरे ऊपर कौन नौबत आई कि मैं रोऊं? बोले, आप पर नहीं आई। तेरी दुनिया पर बहुत नौबत आई है। रोकर अनुभव करो कि हमारी दशा क्या हुई होगी। ये सुजान बचन सुनते अनंत ब्रह्मांड नायक कौशल्या के अंक में नवजात बच्चे की तरह रुदन करने लगे।

परमात्मा राम बालक के रूप में कौशल्या के अंक में रो रहे हैं। और शिशु रुदन सुनकर अन्य रानियां भ्रम के साथ दौड़ आई कौशल्या के प्रासाद में। अनुपम बालक को कौशल्या के अंक में रोते हुए देखकर रानियां भ्रमित हुई हैं। कोई महाराज को खबर करते हैं कि महाराज, बधाई हो, बधाई हो। हमारी कौशल्याजी ने पुत्र को जनम दिया। दशरथजी ने पुत्र के जनम की बात सुनी, तो ब्रह्मानंद की अनुभूति हुई। जिसका नाम सुनकर शुभ होता है वो मेरे घर आया क्या? कौन मानेगा ये? ये भ्रम है कि ब्रह्म है? इसलिए अवधपति ने सोचा, वशिष्ठजी को जल्दी बुलाओ। गुरु ही तो पर्दा खोलकर बतायेंगे कि भ्रम है कि ब्रह्म है? वशिष्ठजी ब्राह्मणगणों के साथ आ गये। निर्णित हुआ, ब्रह्म ही बालक के रूप में आया है और परमानंद में महाराज डूब गये। पूरे संसार में रामजनम की बधाईयां शुरू हुई। माँ विंध्यवासिनी के अंक में बैठकर रामकथा गाई जा रही है तब यहां से आप सभी को रामजन्म की बधाई हो, बधाई हो, बधाई हो।

हमारी आंख, हमारा दृष्टिकोण, हमारा नज़रिया तभी सुंदर है जब हमें किसी में संशय न दिखे। कुछ किसी में हो तो भी। एक बार संशय का कीड़ा बैठ जाता है तो 'गीता'कार का आखरी जो जजमेंट है वो सुनाई देता है, 'संशयात्मा विनश्यति।' संशयी आत्मा का आखिर अंजाम नाश ही होता है। मन में संशय न हो वो देवीपद के योग्य है। और बुद्धि में विवेक छूट न जाये वो 'देवी' शब्द के लिए योग्य है।

मौन की भी एक श्री होती है

'मानस-श्री देवी', उसकी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में हो रही है। माँ के इस सात्त्विक और तात्त्विक स्वरूप का हम थोड़ा ओर दर्शन करें। मैंने कल कहा था कि हमारे यहां शब्दकोश कई हैं। संस्कृत में तो क्या कहूं! प्रत्येक भाषा का अपना शब्दकोश होता है। गुजरात में जब सब जगह राजाशाही थी तब गोंडल एक स्टेट है राजकोट के पास, उस गोंडल स्टेट के उस समय के बहुत अच्छे राजा हुए। आप साहित्य के बहुत उपासक थे। आपने गुजराती में शब्दकोश तैयार करवाया जिसका नाम है 'भगवद्‌गोमंडल।' राजा भगवतसिंह ने बनवाया। तो ये शब्दकोश में 'श्री' शब्द के कई अर्थ है। मैंने कल भी संकेत किया कि 'श्री' शब्द मातृशरीर को भी हम लगाते हैं, 'श्रीमती।' और 'श्री' शब्द हम पुरुष को भी लगते हैं, 'श्रीमान।' इस मुद्दे पर 'भगवद्‌गोमंडल' आगे बढ़ा कि ये शब्दब्रह्म जो है वो पुलिंग भी है, स्त्रीलिंग भी है। जो थोड़ा जाग जाता है वो 'न च लिंगं नच वयं।' इस से पर हो जाता है उसको नारी-पुरुष का भेद नहीं रहता। जो थोड़ा हमसे ऊपर उठ जाता है।

जगद्‌गुरु आदि शंकराचार्य तो शंकर के अवतार। उसने कह दिया था, 'न मे जातिभेदः।' मेरे लिए जीवन में अब कोई जातिभेद नहीं बचा। 'न मे मृत्युशंका न मे जाति भेदः।' न कोई स्त्रीलिंग, न कोई पुलिंग है। न कोई नारी जाति, न कोई पुरुष जाति। और कोई स्त्री-पुरुष का भेद नहीं रहा तो शंकर कहते हैं, 'पिता नैव मे नैव माता न जन्म।' 'न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः।' ये तो शंकर ही कह सकते हैं। न मैं किसी का गुरु हूं, न किसी का शिष्य। ये भारत ही कह सकता है। ओर किसी मुल्क की हिंमत नहीं कि इतना साहस जुटाये। पूरे विश्व का गुरु बनने के बाद जो आदमी कहे, मैं किसी का गुरु नहीं। पूरा जमाना मना करने के बावजूद भी जिसको गुरु मानकर चरणों में लिपट जाते हैं। फिर भी कहे, किसी का गुरु नहीं। न मैं किसी का शिष्य हूं। फिर मुझे हमारे मजबूर साहब का वो प्रसिद्ध शे'र याद आता है कि-

ना कोई गुरु ना कोई चेला।
मेले में अकेला अकेले में मेला।

कौन है वो बुद्धपुरुष जो समस्त भीड़ के अंदर भी अकेला होता है? कौन है वो बुद्धपुरुष जो अकेला होते हुए भी अंदर धमासान भीड़ होती है? जो निरंतर हरि सुमिरे। तो परमात्मा के लिए तो कोई जातिभेद हो ही नहीं सकता। ये तो जगत की रुचि भिन्नता के कारण कभी मातृ स्वरूप में आ जाता है, कभी पितृ स्वरूप में आ जाता है। मैंने आगे भी निवेदन किया कि जानकी और राम एक ही ब्रह्मलीला में एक सीता के रूप में आया; वो ही ब्रह्मलीला के लिए पुरुषरूप में आया। तो 'श्री' शब्द दोनों में चलता है।

तो शब्दकोश में 'श्री' शब्द का पुरुष वाचक यदि अर्थ लें तो कितने अर्थ निकलते हैं और स्त्रीलिंग वाचक उसका अर्थ लें तो कितने अर्थ? 'श्री' शब्द का एक अर्थ होता है, सप्त रागों में एक प्रकार का राग है श्री। और कहा जाता है कि क्लासिकल रागों में से एक राग है श्री। वो गाना बहुत कठिन है, ऐसा कहा जाता है। अब इन 'राग' शब्द को मैं जरा मोड़ दूं तो 'श्री' पुलिंग है तो वो राग है। पुरुष रागी होता है। पुरुष थोड़ा मात्रा में भोगी होता है। ये रागी इसी अर्थ में राग। और 'श्री' शब्द को स्त्रीलिंग में लूं तो ये श्री राग नहीं, अनुराग हो जाता है; आसक्ति नहीं, भक्ति हो जाता है। पूरा स्वरूप बदल जाता है। 'श्री' शब्द का स्त्रीलिंग वाचक यदि अर्थ करें तो शब्दकोश कहता है, श्री का एक अर्थ होता है आबादी, तरक्की। जैसे आप रियाज़ करते-करते अपने वाद्य में ओर तरक्की कर ले; अच्छा बजाने लगे। तुम खुद एन्जोय करने लगो। तो उसका नाम है श्री। आबादी, बढ़ती, उन्नति उसको श्री कहते हैं। श्री का एक अर्थ तो बहुत प्रसिद्ध है ऐश्वर्य, वैभव, जाहोजलाली।

श्री का स्त्रीलिंग अर्थ है कमल। कमल का फूल उसको श्री कहते हैं। श्री मानी कमल, सरोज। श्री का आगे का सगोत्रीय शब्द है कांति, आभा, तेजस्विता, एक प्रतिभा, सम्पन्नता। चेहरे में एक तेज, एक औरा। हमारे सब देवता- देवियों के पीछे हम एक वर्तुल करते हैं, उसको कहते हैं श्री।

छोटे-छोटे बच्चों की तेजस्विता देखी! उसमें श्री होती है। आदमी तपस्वी होकर श्रीवान बन सकता है। बच्चे ने कोई तपस्या नहीं की लेकिन मेरे भाई-बहन, निर्दोषता भी एक श्री है। ट्रांसपेरेंसी, एक आरपारता। जो सात्त्विक आभा को देख आंखें डबडबा जाए! मुझे कहने दो, योग की श्री होती है; साधना की श्री होती है; तपस्या की अपनी श्री होती है; अनुष्ठानों की भी श्री होती है। लेकिन सबसे श्रेष्ठ श्री मेरी समझ में है भजन की श्री। 'भजन' बड़ा गुणातीत शब्द है। भजन न रजोगुणी शब्द है, न तमोगुणी है, न सतोगुणी है। तीनों गुणों से पर एक श्री है जिसका नाम है भजन।

ये विन्ध्याचल ने गुरु का वचन सुना तो ऐसे सुना कि वो लेटा रहा आज तक। तो गुरु का वचन क्या करता है? आदमी को बिंध देता है। वह बिंध गया कुम्भज ऋषि की बानी से तबसे विंध्य हो गया। हमारे डॉकटर साहब ने मुझे लिख कर दिया, बापू, गुरुमुखी अर्थ सुनकर लगता है ये पर्वतराज गुरु के वचन सुनकर, ये पर्वतराज गुरु वचनों से इतना विंध गया इसलिए उसका नाम शायद विन्ध्याचल पड़ गया। गुजरात के एक संत रवि साहब को लिखना पड़ा -

बाण तो लागे रे जेनां पंडळां विंधाणां रे।
जेने जेने लाग्यां संतो शब्दोंनां बाण।

वचन की भी एक श्री होती है; मौन की भी एक श्री होती है। आदमी मौन बैठे उसकी एक आभा होती है साहब! और मौन में भी जिसके चेहरे पर मुस्कुराहटवाला मौन हो तो समझना कि ये आदमी ने कुछ पाया है। पांच वस्तु याद रखना युवक। समय मिले मौन रहना; एक। दूसरा, मौन के साथ मुस्कुराहट रखना; मुस्कुराते रहना। तीसरा, 'मानस' अपनी झोली में रखना, 'रामचरितमानस'। चौथा मारुति का स्मरण करना। पांचवां मोरारिबापू को याद रखो यार! ये पंच 'म'कारामृत है। पंच मकारामृत।

एक वस्तु याद रखो प्लीज़, ब्राह्मण का अर्थ मैं तो समकालीन करता हूं कि विप्र होना चाहिए; द्विज होना चाहिए; ब्रह्म में रममाण करना चाहिए। ये सब अर्थ ब्राह्मण के। हमारे दो शास्त्रीजी हैं न वो हमारे जब यज्ञ करना होता है पौराणिक या वैदिक यज्ञ; ऐसे ही निरुद्देशे यज्ञ होता है। तो उसको मैं कहूं कि इस बार हम कौन देवता का यज्ञ करें? तो बोले, बापू, हमको क्यों पूछते हो? आप बताओ न। मैंने कहा, ब्राह्मण वचन बस। ये मैं मानता हूं; कहता हूं; उस समय आप ये न देखो कि ये ब्राह्मण तो कोई ब्राह्मण धर्म नहीं पालता है। सवाल तुम्हारे आदर और श्रद्धा का है। हमारे देश में एक पत्थर को सिंदूर लगा दो, हनुमान होने में देर नहीं लगती! पत्थर का कोई करिश्मा नहीं है। हमारे श्रद्धा का सवाल है। प्रश्न ये है। तो ब्राह्मणत्व, ब्रह्मत्व कई अर्थ निकाले जाते हैं। लेकिन फिर भी मैं वर्ण के रूप में नहीं कहता। मैं कोई समाज के विभाजनवाला आदमी ही नहीं।

गाय जब बहुत वात्सल्य फूटता है तब अपनी जीभ निकालकर बछड़े को चाटती है। ये महाकाली के मुख में जीभ बाहर है इसका मतलब क्या? एक वत्स बनकर कोई उसके पास साधक जाये तो ये माँ है अपनी। लाल रंग प्रेम का है। याद रखिएगा, लाल जबान से माँ काली हमें वात्सल्य करके प्यार करती है। क्योंकि ये प्रेम का प्रतीक है। मध्यप्रदेश में इंदौर के एक बहुत फेमस शायर राहत इंदौरी साहब का एक शे'र है-

मेरे जनाज़े पर लिख देना यारों,
महोब्बत करनेवाला जा रहा है।

तो मैं इसी से आगे बढ़ा कि ये प्रेम जो आजकल लोग प्रेम की बातें करते, वो प्रेम नहीं। जो 'मानस' में लिखा है-

परम प्रेम पूरन दोउ भाई।
मन बुधि चित्त अहमिति बिसराई।।

ये प्रेम; परम प्रेम। सूफ़ियों का प्रेम; बाउलों का प्रेम; बंजारों का प्रेम; मार्गी साधुओं का प्रेम। वो प्रेम जो परमेश्वर का पर्याय है। जिसस क्राइस्ट ने कहा था, प्रेम ही परमात्मा है। मेरे 'रामचरितमानस' का निचोड़ तीन शब्दों में समा जाता है- सत्य, प्रेम और करुणा। तो कोई किसी से प्रेम करते हैं तो गुलाब का फूल देते हैं। ये प्रेम पेश करने का सबका एक इरादा होता है। कोई मुस्कराहट देते हैं; कोई हावभाव में प्रेम प्रस्तुत करेंगे। कई चेष्टायें होती हैं प्रेम की। कबूतरों के साथ भेजते हैं। कबूतर चिट्ठियां-प्रेमपत्र ले जाता है। भागवतकारों से मैंने सुना, सबसे पहला लव लेटर, सबसे पहला प्रेमपत्र लिखा रुक्मिणीजी ने भगवान योगेश्वर कृष्ण को, द्वारिका। रुक्मिणी का मैं ये पत्र पढ़ता हूं तो मुझे

'मानस' का विभीषण याद आता है। राम को कहता है, मैंने आपको देखा नहीं; मैंने आपके बारे में केवल सुना है वो आपके दूत हनुमानजी के माध्यम से।

हे माँ, हे भगवती, हे विंध्यवासिनी, अब दो दिन तेरी गोद में हैं हम। हमारा भाव कुबूल कर, माँ। और 'मानस' का मंत्र है; प्रभु कहते हैं, आप करो अच्छी बात है। ये आपकी श्रद्धा। लेकिन मुझे पूजा प्रिय नहीं है। आप मेरी प्रतिष्ठा का गायन करो लम्बे-लम्बे स्तोत्रों में; ठीक है। ये आपकी वाणी पवित्र करने का आपका प्रयास है। लेकिन इससे मैं राज़ी नहीं होता हूं। आप मुझे पैसा धरो ये आपकी संपत्ति का सदुपयोग है। लेकिन इससे मैं राज़ी नहीं होता। तुलसी कहते हैं 'मानस' में-

रामहिं केवल प्रेम पियारा।
जानहिं लेउ जो जाननिहारा।।

कथा क्यों है? इतना खर्चा क्यों है? नौ दिन के चार-चार घंटे गिनो तो भी कितने! छत्तीस-चालीस घंटे। कभी ज्यादा, कभी कम। तो कितने घंटे का वक्तव्य होता है? इतने वक्तव्य के लिए इतना खर्चा क्यों हो? लेकिन लाज़िम है ये खर्चा। क्योंकि यदि कोई विचार मेरे देश की युवा पीढ़ी में बैठ जाये और फिर वहां द्वारिका बस जाये; फिर वहां चित्रकूट बस जाये; फिर वहां विंध्याचल बस जाये; फिर वहां बनारस बस जाये; फिर वहां मूल रूप में अवध बस जाये। मेरा तो कोई लक्ष्य नहीं। फिर भी यदि आप लक्ष्य धारण करें तो महिमावंत लक्ष्य के लिए कितना भी खर्च न के बराबर है। आप यहां भंडारा तो देखने जाओ! कितने लोग प्रसन्नता से प्रसाद ले रहे हैं! ये रुपया से होता ही नहीं; ये विंध्यवासिनी की कृपा से होता है। भजन और भोजन का जो संयोग है; ये माँ की कृपा है। इन्सान के दो हाथों का ये काम नहीं है। वहां कोई दुर्गा आकर कर जाती है। ये हम देख नहीं पाते। कौन करे? कैसे होता है ये सब? इसलिए कथा पूरी होती है तो व्यासपीठ छोड़ते-छोड़ते एक चौपाई मैं मन में गुनगुना लेता हूं-

तुम्हारीं कृपा भयो सब काजू।

हे बाप! कोई गोपनीय हाथ ने ये काम कर दिया। हमारी कोई औकात नहीं है साहब! हर एक क्षेत्र जगत को दिव्य बनाने में नाकाम होता जा रहा है तब केवल भगवत कथा का क्षेत्र अपनी अदा से थोड़ा बहुत सफल होता जा रहा है। क्यों इतने युवान भाई-बहनें कथा सुनते हैं? सत्संग बहुत ज़रूरी है; बहुत ज़रूरी है। मैं कभी किसी युवान को नहीं कहता कि आप दुनिया एन्जोय न करो। हां, अपने बाप-दादा की खानदानी को याद रखते हुए झूमो-नाचो; मर्यादा से गाओ; प्रसन्न रहो; कमाओ। लेकिन विवेक की ज़रूरत है। आखरी अवस्था में वैराग की भी ज़रूरत है। विवेक रहे और फल न आये तो चुक गये। विवेक का फल ही है वैराग। और वैराग आने के बाद भी वो फल यदि रसवाला न हो; हरिनाम का रस न हो तो फल भी बेकार। क्यों युवान बहन-बेटियां सुनती हैं? पढ़ी-लिखी बेटियां क्यो सुनती हैं?

मैं आपसे निवेदन करता था कि श्री का अर्थ है ऐसा बोलना कि उजाला हो जाये।

जासु बचन रबिकर निकर।

वचननुं बाण वींधी नाखे। और उसी तरह मौन की भी एक श्री होती है। आदमी मौन बैठा है ये भी एक प्रकाश है; ये भी एक उजाला है। मैं आपसे निवेदन करूं, जितना हो सके साधना में मौन रखो। संसार में व्यवहार में बोलना चाहिए। मैं तो ये भी बहुत प्रैक्टिकल बातें करूं कि तुमने चौबीस घंटों का मौन रखा; तुम्हारे घर में बच्चा है, बालक है वो तुम्हारे पासे आकर कहे, दादा, दादा, तो उसके साथ बोलना। वहां जिद्द मत पकड़ना कि मेरा मौन है। उसके साथ बोलो ये तुम्हारे मौन व्रत का फल तुम्हारी गोद में आया है। उसको तिरस्कार न करो। प्रैक्टिकल होवो। बाकी मौन की बहुत ताकत है। और ओशो रजनीशजी कहा कहते थे कि साधक जब एक ऊंचाई पर पहुंच जाता है तो दुनिया को लगता है कि वो नहीं बोलता, उसका मौन बोलता है। मौन बोलेगा। ये नियम है।

तो श्री के कई अर्थ हैं- आबादी, चढ़ती, उन्नति, ऐश्वर्य। श्री मानी ऐश्वर्य, वैभव, जाहोजलाली। श्री मानी कमल। 'श्री गुरुचरन सरोज रज।' श्री मानी कांति, शोभा, भभक, सौंदर्य। श्री मानी कीर्ति, ख्याति, महिमा, गौरव, प्रतिष्ठा। चन्द्र की सोलह कलाओं में से एक कला श्री है। मुझे हमारे सावरकुंडलावाले गुणवंत बापू ने लिखकर दिया है तो मैं प्रसाद करूं। जैन धर्म के अनुसार छप्पन अंक में से एक दिग्कुमारी को श्री कहते हैं। जम्बुद्वीप का हिमवत पर्वत पर आके पद्मकुंड में बसती एक श्री नाम की देवी है। ऐसा जैन आगम, जैन विचारधारा कहती है। श्री मानी धर्म, अर्थ और

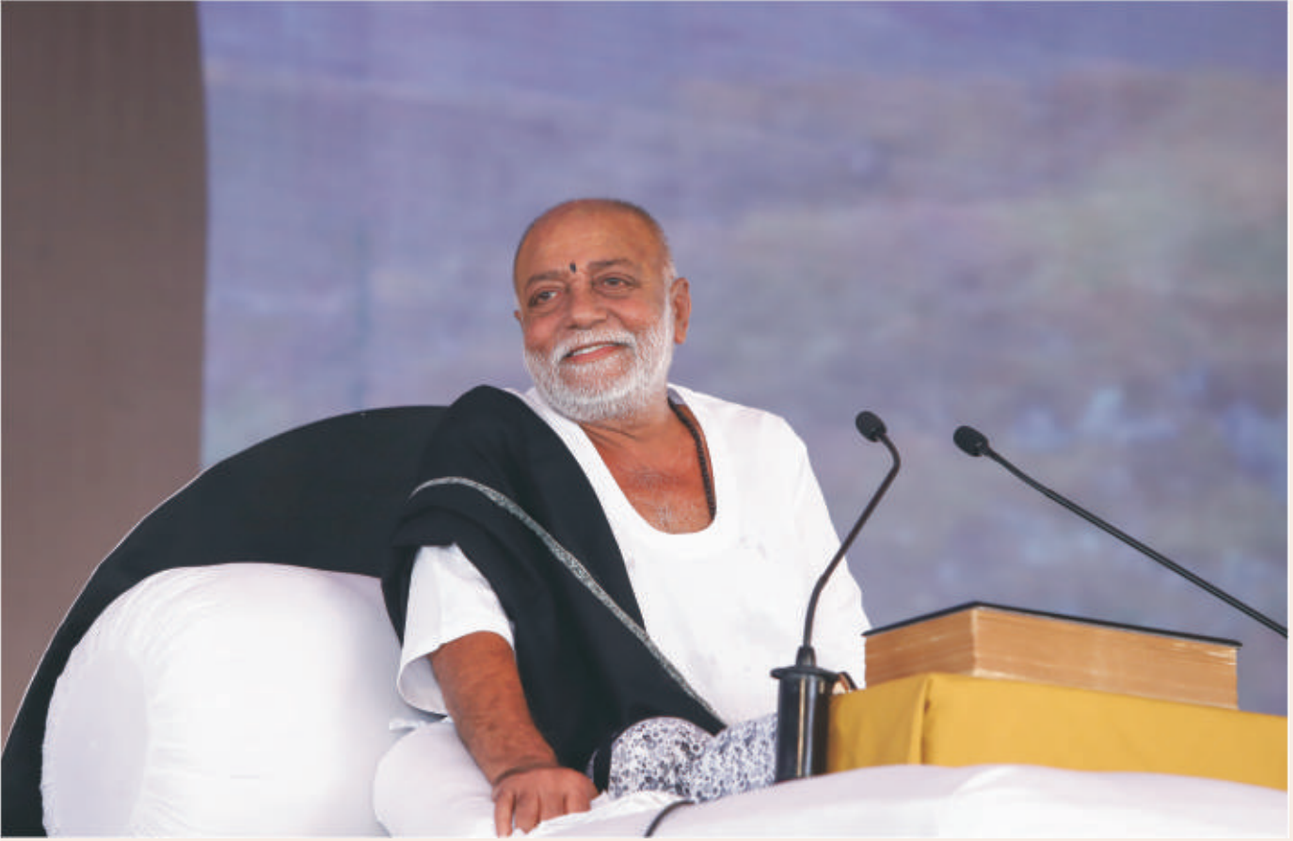

काम। ये तीनों पुरुषार्थ श्री है। श्री मानी परमेश्वर। परमात्मावाचक भी ये शब्द बना दिया। श्री मानी पार्वती। श्री मानी भगवान शंकर को जो हम समर्पित करते हैं बिल्वपत्र। बेली के वृक्ष को भी हम श्री कहते हैं, बिल्वपत्र। बुद्धि को भी श्री कहते हैं। माया को भी श्री कहते हैं।

उभय बिच श्री सोहाई कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।

श्री का एक अर्थ है राज्यसत्ता। सत्ता जो है उसको भी श्री कहते हैं। यद्यपि वो राजसी श्री मानी जाएगी। लक्ष्मी देवी विष्णुपत्नी क्षीरसागर से जो उत्पन्न हुई है उसको श्री कहते हैं। श्री का एक अर्थ होता है लविंग, लोंग। श्री मानी लोबान जो सूफियों में, इस्लाम धर्म में ख़ास करके दरगाहों पर जो डाला जाता। जैसे हम गुग्गुल डालते हैं और वो उसमें लोबान डालते हैं। यद्यपि तलगाजरडा दोनों मिश्रण करके डालते हैं। यही समन्वय है। मेरे अग्नि की उपासना में मैं गुग्गुल और लोबान दोनों डालता हूं। एकता तो व्यासपीठ करती है। कभी-कभी राजपीठों ने तो एकता तोड़ने का धंधा किया है! जो व्यासपीठ ने किया वो कुछ ओर है। तो लोबान को श्री कहते हैं। विभूति को श्री कहते हैं। ये तो ठीक है विभूति। श्री कहते हैं। श्री एक वृद्धि नामक औषधि का नाम है। ऐसी औषधि को घर में रखने से घर में लक्ष्मी बढ़े। श्री मानी साधन। तुम माला से जपते हो ये तुम्हारी श्री है। कोई भी साधन तुम्हारा ये श्री है। श्री मानी सीताजी। 'उभय बिच सिया सोहाई कैसे।'

श्री का एक अर्थ है स्फूर्ति। तरवराहट। एकदम स्फूर्ति उसको श्री कहते हैं। श्री स्वयंभू मन्वंतर के भृगु ऋषि की ख्याति नाम की स्त्री के पेट से जन्मी हुई एक कन्या का नाम श्री है। उसको धाता और विधाता नाम की दो बहन थी। उस श्री को जन्मकाल से भृगु ने विष्णु को दे दी थी। ऐसी कोई पुराण में कथा रही होगी। श्री मानी अणिमा आदि सिद्धि। संपन्नता को भी श्री कहते हैं। आठ महासिद्धि संपन्न लोगों को भी श्री कहते हैं। तो श्री पुल्लिंग भी है, स्त्रीलिंग भी है। इसलिए हम श्रीमान कहते हैं; श्रीमती भी कहते हैं।

तो ऐसे श्री देवी की सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में जब हो रही है तब आज सातवें दिन है। कालरात्रि का दिन आज। कालरात्रि का अर्थ अक्सर ख़राब

किया जाता है। 'मानस' में दो बार कालरात्रि का उल्लेख आया। कहते हैं कालरात्रि है भाई, कालरात्रि! लेकिन उसको पोझिटिव क्यों नहीं लेते? ये माँ का नाम है। माँ के बारे में नेगेटिव क्यों सोचते हैं? पोझिटिव सोचो। अर्थ बदलो। जहां 'कालरात्रि' शब्द का प्रयोग 'मानस' में आया आप जानते हैं।

कालराति निसिचर कुल केरी।
तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।।

अब 'गीता' प्रेस का भाष्य; अन्य महापुरुषों का भाष्य। शब्दों का अर्थ के रूप में केवल भाषांतर के रूप में बहुत सीधा और सरल अर्थ है कि ये सीता जो है, निशिचर कुल की कालरात्रि है। खा जाएगी सबको! ख़तम कर देगी! ऐसा अर्थ भाष्यों में आपको मिलेगा। ख़ास करके जो सीधा शब्दार्थ है, भाषांतर है। जो सीता आई है लंका में कालरात्रि है निशिचरों के लिए। और इसलिए निशिचरों को सीता पर इतनी प्रीति होने लगी। लेकिन समझते नहीं कि ये कालरात्रि है। अब सीता के प्रति प्रीति होना ये तो भक्ति का परिचायक है। जिस प्रदेश में 'होहिं भजन नहिं तामस देहा।' का सूत्र चल रहा। और वहां पंक्ति में लिखा है, 'तेहि सीता पर प्रीति घनेरि।' ये नाशक कालरात्रि नहीं है। ये सीता के प्रति लोगों की बहुत प्रीति है इसलिए ये रात्रि राक्षसों के कुल की निर्वाणदायक रात्रि है। मुक्तिदायक रात्रि है; पोझिटिव लो। और हुआ। सीता न आती तो इन राक्षसों का निर्वाण कब होता, परमात्मा जाने!

ये जानकी आई। और जानकी है भक्तिरूपा। रावण चाहता था कि मेरी तो भक्ति में रुचि नहीं लेकिन भक्ति मेरी लंका में आये तो। न आये मूल रूप में सही कम से कम छाया के रूप में आ जाये तो भी बहुत। तो भक्तिस्वरूपा सीता पर जिसकी प्रीति घनेरी हो जाये उसके लिए कालरात्रि कालरात्रि नहीं है, मुक्ति की रात्रि है। ऐसा पोझिटिव क्यों न किया? और मुझे तो यही सही लगता है। मेरे जीवन के लिए यही सही लगता है। मुक्ति की रात्रि है। और ध्यान देना, हमारे पारिवारिक दृष्टि से माता के नौ रूप में देखो तो आखरी रूप माता का निर्वाणरूपा है। जैसे शिव निर्वाणरूप है वैसे पार्वती भी निर्वाणरूप है; ये निर्वाणरूपा है। आखरी माँ का रूप निर्वाण रूप है।

मैं आपसे निवेदन करूं, किसी माँ के उदर में गर्भ में यदि कन्या है। अब ये परीक्षण करवा करके भ्रूणहत्या करते हैं उसका बहुत खतरनाक परिणाम आया है। इससे समाज बचे। लेकिन माँ के गर्भ में जब एक चेतना आती है। और वो भी कन्या का रूप धारण करती है तो वो गर्भरूपा श्री है। हमारे घर में नौ प्रकार का श्री का मंदिर है। उसको देख लो एक बार फिर माँ का दर्शन सुलभ हो जाएगा। आपको पता होना चाहिए कि जब गर्भ में चेतना होती है तब एक संस्कार जो किया जाता है माँ के साथ उसका नाम है श्रीमंत। श्रीमंत का संस्कार। इसका मतलब है गर्भ में श्री आयी है। तो ये श्री वाचक शब्द है। वहां गर्भरूपा श्री निवास करती है। अब ये बेटी बनकर बाहर आ गई। वो दूसरा रूप है बालिका रूप। एक बालिका के रूप में माँ के आंगन में, माँ की गोद में वो है श्री का बालिका रूप। ये दूसरा रूप है। अपने परिवार में ही देखिये।

गर्भरूपा श्री। दूसरी बालिकारूपा श्री। फिर कन्या बड़ी होती है तो हमारे आंगन में एक तीसरा रूप माताजी का प्रगट होता है, उसको कहते हैं किशोरी रूप। हमारी जानकीजी को कहते हैं किशोरीजू। राधाजी को ब्रजमंडल कहता है राधेजू। किशोरीजी; राधा भी लगाने कि ज़रूरत नहीं; किशोरी कह दो, राधा ही दिखती हैं। मिथिला में कहो किशोरी तो सीता ही दिखती है। ये तीसरा रूप है।

एक गर्भ में श्री है। एक बालिका श्री है। तीसरी किशोरी श्री है। उसके बाद चौथी श्री रूप हमारे घर में होती हैं उसको तपस्विनी कहो। जो कुमारिका बन जाती। या ब्रह्मचारिणी कहो। कुमारिका; जैसे कन्याकुमारी। कुमारिका रूप उसको तपस्विनी या ब्रह्मचारिणी माना गया है। ये चौथा रूप। गर्भरूपा, बालिकारूपा, किशोरीरूपा, कुमारीरूपा इसमें तपस्विनीरूपा सब आ जाता है। उसको पार्वती माना जाता है। ये 'कुमारिका' शब्द पार्वती के लिए है।

पारबति तप कीन्ह अपारा।

एक धर्म; तब वो श्रीमती बन जाएगी। तब उसका रूप ये श्रीमती बन जाएगा। उसके बाद वो मातृत्व की प्राप्ति करती है। और इसलिए उसको हम जगन्माता कहते हैं; अम्बा कहते हैं; अम्बिका कहते हैं। ये फिर मातृत्व आ गया क्योंकि उसने कार्तिकेय को जनम दे दिया; गणेश को जनम दे दिया। तो उसका रूप हो जाता है अम्बा। अपने घर में ही

देखो। हद से ज्यादा मंदिर बनाने की ज़रूरत नहीं। घर को ही मंदिर बना दो। जहां ज़रूरी है, मंदिर बनना चाहिए। टूटा-फूटा हो उसका जीर्णोद्धार होना चाहिए। लेकिन मैं गुजरात में कहता हूं, हमारे यहां कई संस्थाएं ऐसी हैं, करोडों-अब्जों के बना देते हैं एक ही मंदिर! ये तो अच्छा है भाई, मंदिर बने अच्छा है। लेकिन आदिवासी विस्तार में जहां धर्म परिवर्तन हो रहा है; हमारी जनता को कुछ लोग सेवा का प्रलोभन देकर उसको धर्मान्तर कराते हैं, वहां उस कस्बे में एक-एक मंदिर बना दे तो अब्जों रुपये के कितने मंदिर बन जाते? लेकिन हमारी कौन सुने? मंदिर होने चाहिए, अवश्य; होने ही चाहिए। उसको नया रूप मिलना चाहिए। लेकिन जहां न हो वहां तो करो!

तो मातृरूपा ये बनती है। 'मातृरूपेण संस्थिता।' जब ये हो जाती हैं संतान की माँ। एक माता बनने के बाद कोई भी नारी धीरे-धीरे प्रौढ़ होने लगती है। मातृत्व प्राप्त करने के बाद दो-तीन बच्चे प्रगट हो गये उसके बाद उसकी क्षमामूर्ति शुरू हो जाती है। वो सबको क्षमा कर देती है। बच्चे हैं घर में। पति ने कुछ उलटा-सुलटा कर दिया; क्योंकि मातृ केवल बच्चे की ही नहीं, उसके बाद वो पति की भी माँ बनने लगती है। पति को क्षमा दे तो पति की माँ है। देवर को क्षमा दे तो उसकी माँ है। उसके बाद उसका एक मातृस्वरूप हमारे परिवार में प्रगट होता है। उसके बाद एक क्षमारूप। उसके बाद जो रूप प्रगट होता है उसको कहते हैं भक्तिरूप। घर में बुज़ुर्ग माताओं को देखिये। हमारे यहां सहज ये गति थी। ट्रेन ट्रैक पर चले तो आगे-आगे आनेवाले स्टेशन अपने आप आते हैं। ट्रैक पर चलनी चाहिए और चलती रहनी चाहिए। तो अपने आप स्टेशन आते है! अवस्था; साधना की अवस्था। और ये 'अवस्था' शब्द आया तो मैं एक बार साधकों को कहूं, अवस्था साधक के लिए होती है स्वरूप की कोई अवस्था नहीं होती। योगी लोग ज्यादा समझेंगे। स्वरूप सबका एक है। इसमें कोई निम्न-बड़ा स्वरूप नहीं। अवस्था बड़ी-छोटी होती है साधना की कि पहले इतने जप करते थे। फिर इतना अनुष्ठान करते। स्वरूप अवस्थामुक्त है। अवस्था उसको नहीं होती।

क्षमारूप के बाद वो भक्तिरूप हो जाती। घर में माताएं जो उम्रवाली होती हैं देखिये, जब रोटी दो, खा लेंगे। मुस्कुरायेंगे। बच्चों को गोद में लेके झुलायेंगे और हरिनाम लेंगे। एक भक्तिरूपा उसका रूप हो जाता है। उसके बाद आखिरी रूप जो होता है उसको कहते हैं निर्वाणरूपा श्री। जैसे शंकर निर्वाणरूप, तो अर्धनारेश्वर के रूप में शिवा भी निर्वाणरूपा बन जाती है। तो ये जो एक विकास है, जो उत्तरोत्तर साधना का जो क्रम है ऐसे माताओं को मातृरूपा को भी देखा गया। तो कालरात्रि का पोझिटिव अर्थ करो। सीता न आती तो लंका की मुक्ति न होती। और मुक्ति के कारण ये लोग इतनी प्रीति करने लगे। ऐसे अर्थ में इस पंक्ति को लेना चाहिए। तो आज है माता कालरात्रि का दिन।

अब बीच में आप के कुछ प्रश्न ले लूं। 'बापू, बुद्धि को धन चाहिए और मन को शांति चाहिए। क्या दोनों काम संभव है?' लेकिन आपको किसने ये बुरी खबर दी कि बुद्धि को धन चाहिए। ये कौन है कासिद, कौन है ये पैगम्बर जो पैगाम लाया है? बुद्धि को धन न चाहिए। ये तो आपने बुद्धि का धर्मांतरण कर दिया! बुद्धि को विवेक चाहिए। किसने कहा कि बुद्धि को धन चाहिए? आपके पास बुद्धि धन चाहती है, चलो। लेकिन उस धन के बाद कोई आप पर डाका डाले कि तेरे धन दे दे वरना मार डालूं! तब बुद्धि क्या कहेगी? मार दे, ये कहेगी? नहीं। बचा, बचा।! और धन से बच जाना ज्यादा महत्त्व का है। ये विवेक की मांग है। बुद्धि को धन नहीं चाहिए। बुद्धि को विवेक चाहिए। लेकिन वो बेचारा चाहता है; वो गज़ल है न, ये गज़ल जैसा हो गया-

मैं नसीब हूं किसी ओर का मुझे मांगता कोई ओर है।
मैं करीब हूं किसी ओर के मुझे जानता कोई ओर है।

बड़ी प्यारी गज़ल है। तो बुद्धि धन चाहती है ये आरोप है। बुद्धि विवेक चाहती है। मन शान्ति चाहता है ये ठीक है। आपकी दूसरी बात, 'क्या अंग्रेजी भाषा की जन्मदाता हिन्दी है?' मुझे खबर नहीं लेकिन संस्कृत सब भाषाओं की माँ की माँ है। इतना मैं जानता हूं। हमारे पांडुरंग दादा स्वाध्याय के प्रणेता तो कहा करते थे; कोई उसको कहते कि लोग संस्कृत नहीं पढ़ते हैं और अंग्रेजी ज्यादा क्योंकि संस्कृत की कोई मार्केट वेल्यू नहीं है। ऐसा तर्क देते थे। तो मैंने दादा से सुना था, पांडुरंग आठवले दादा; वो कहते थे कि माफ़ करियेगा, मार्केट वेल्यू माँ की कभी होती ही नहीं। कोई चाहेगा माँ की मार्केट वेल्यू हो? ये तो हमारी माँ है। फिर वो कहते, मार्केट वैल्यू तो उसकी होती है... वो वो बोलते थे; मैं वो नहीं बोल सकता! आज तो कम्प्यूटर युग में भी लोग बताने लगे हैं कि आज के आविष्कार जो है उसमें संस्कृत भाषा सरल पड़ती है। वैज्ञानिक सत्य होने लगा है।

'बापू, जमाने में महापुरुष ही क्यों होते हैं? महामहिला क्यों नहीं होती?' महामहिला इससे बड़ी कौन है माँ जैसी? शंकर बाप भी उसके नीचे है, ब्रह्म भी। एक अर्थ में देखो तो माँ सर्वोपरि है। माँ ही तो है। इससे महामहिला कौन है? गृहस्थ आश्रम को धन्य किये। अब संन्यास परंपरा को धन्य करती है। सनातन धर्म में गृहस्थ संन्यास ले सकता है। ये क्रम तो है हमारे यहां, ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, फिर वानप्रस्थ आश्रम, फिर संन्यास आश्रम। ये क्रम ऋषिमुनियों ने बनाया है। तो ये क्रमशः हो। लेकिन गृहस्थाश्रमी रहो और गृहस्थ जीवन मैं ही भीतरी संन्यास धारण करो। संन्यास जगत में कई महापुरुष संन्यासी हैं। अब ज़रूरत नहीं है। घर में रहकर संन्यासी होओ।

मेरा एक सूत्र है, दिन में गृहस्थ रहना; रात में संन्यासी रहना। ज्यादातर क्या होता है? दिन में हम संन्यासी होते हैं; रात में सब गृहस्थ होते हैं! ये सरल संन्यास। तुलसीदासजी ने 'दोहावली' में लिखा कि 'कानन बसहिं के गेह।' घर में बसो, भवन में रहो या वन में रहो, हरिनाम लो बस। और भगवान कृष्ण ने एक संन्यास की उद्घोषणा की 'भगवद्गीता' में कि अर्जुन, तू उसे सतत संन्यासी जान। वहां कपड़े की चीज़ नहीं बताई कि वो ऐसे कपड़े पहनता हो, शिखा-सूत्र त्याग चुका हो, अग्नि-स्त्री को छूता न हो। दंडधारी हो गया हो। कोई ऐसी परिभाषा नहीं। और कृष्ण कहते हैं, 'ज्ञेयः स नित्य संन्यासी।'

ज्ञेयः स नित्य संन्यासी यो न द्विश्यति न कांक्षति।

जो किसी का द्वेष नहीं करता और किसी से कुछ कामना नहीं रखता उसको निरंतर संन्यासी समझ। बस। चाहे किसी भी रंग के कपड़े। इसका मतलब संन्यास की आलोचना नहीं है। संन्यास अद्भुत है। और भारत की महिमा है संन्यास। उसकी एक उज्वल परंपरा है। दसनाम संन्यास का प्रणेता हमारे जगद्गुरु आदि शंकर; वहीं से संन्यास शुरू है। एक अद्भुत परंपरा है। देश-काल के अनुसार कुछ बातें हो जाती हैं। छोड़ो। हम किसी का द्वेष न करें और किसी से कुछ चाहें न तो संन्यासी; नित्य संन्यासी। देखो, ये नित्य संन्यास, निरंतर शाश्वत संन्यासी है। 'न कांक्षति।' तो ऐसा सोचो। सहो; सहना तपस्या है कलियुग की। काली माँ को बदनाम न करो। काली माँ प्रहार तो आसुरी विचार पर करती है। बाकी आसुरी विचार पर उसका प्रहार वो भी तो अंततोगत्वा प्रसाद ही है। ये कोई हिंसा ही नहीं; ये प्रसाद है।

'बापू, मैं पुलिसवाला हूं। रातभर ड्यूटी करता हूं। और कथा में इतना आनंद आता है। कथा का बहुत प्रेमी हूं। लेकिन कथा में आते ही मुझे नींद आ जाती है। क्या करूं?' मैं स्वागत करता हूं कि कथा में सोओ। ड्यूटी में जागृत रहो। यहां सो जाओ। तुम्हें विश्राम की ज़रूरत है। और मेरी चौपाईयां तुम्हारी लोरी बन जायें तो मेरी सफलता है। लेकिन जब आपकी ड्यूटी है तब जागो; तब सोओ न। ये बहुत अच्छा है। आओ; सोओ।

'बापू, बचपन में मैं जब छोटी थी तो माँ मुझे सीता बनने की प्रेरणा देती थी; राधा बनने की प्रेरणा कभी नहीं देती थी। दुनिया की सभी माँए ऐसा ही करती हैं। क्यों? राधा क्यों नहीं?' सीता बनने की सलाह इसलिए देती हैं माताएं, मेरी समझ में सीता बनना सरल है। थोड़ा सहन कर लो। थोड़ा सरल जीयो। सीता बनना आसान है; इतना ज्यादा मुश्किल नहीं। राधा बनना बहुत मुश्किल है; बहुत मुश्किल है। उसके लिए तो पूरे राधेजू का चरित्र देखना पड़ता है। फिर मैं उसमें चला जाऊंगा तो मैं अपने को खो दूंगा!

श्री का अर्थ है ऐसा बोलना कि उजाला हो जाये। और उसी तरह मौन की भी एक श्री होती है। आदमी मौन बैठा है ये भी एक प्रकाश है; ये भी एक उजाला है। जितना हो सके साधना में मौन रखो। संसार में व्यवहार में बोलना चाहिए। मैं तो ये भी बहुत प्रैक्टिकल बातें करूं कि तुमने चौबीस घंटों का मौन रखा; तुम्हारे घर में बच्चा है, बालक है वो तुम्हारे पासे आकर कहे, दादा, दादा, तो उसके साथ बोलना। वहां जिद्द मत पकड़ना कि मेरा मौन है। उसके साथ बोलो ये तुम्हारे मौन व्रत का फल तुम्हारी गोद में आया है। उसको तिरस्कार न करो। बाकी मौन की बहुत ताकत है।

मानस-श्री देवी : ८

'रामचरितमानस' शैलपुत्री है

बाप! ये रामकथा आठवें दिन में प्रवेश कर रही हैं। माँ के कई रूप हैं। शास्त्रकारों ने कितने-कितने रूप का ज़िक्र किया है! माँ के अगणित रूपों को प्रणाम करते हुए, 'कालरात्रि च सप्तमिति महागौरी च अष्टमी।' माँ का सातवां रूप है कालरात्रि। और आठवां दिन, आज का जो माँ का स्वरूप है वो महागौरी। अगले स्तोत्र का आरंभ करते हुए ऋषि मार्कंडेय के मुख से जो स्वाभाविक उद्‌गार निकले हैं ग्यारह रूप माँ के।

जयंती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तुते।

ग्यारह रूप यहां हैं। क्या है माँ? जयंती, एक। मंगला, दो। काली, तीन। भद्रकाली, चार। कपालिनी, पांच। छठी दुर्गा। क्षमा, सात। धात्री, आठ। शिवा, नौ। स्वाहा, दस। स्वधा, नमोस्तुते। और गुरुकृपा से 'रामायण' की गंगा में थोड़ा अंदर गोता लगा दो तो ग्यारह से ग्यारह रूप 'मानस' के हैं। 'मानस' के ग्यारह रूप।

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू।।
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी।।

जयंती; ये ('मानस') मेरी माँ जयंती है। हमें तो यहां पूछना है। हमारा घराना यही है यार! ये है हमारी 'मानस' मैया का जयंती रूप। मंगला रूप; रामकथा एक तो मंगल भवन की कथा है।

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुं सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु।।

जयंती, मंगला, काली; कितनी आहुति दूं! किन-किन रागों से! किन-किन भावों से! किन-किन गुरुदत्त शब्दों से!

महामोह महिसेष बिलासा।
रामकथा कालिका कराला।।

पाहिन खड्गे शूलं देवी पाहि.. खड्गे च। ये ('मानस') कालिका और भद्रकाली। जिसकी मैं कल चर्चा कर रहा था 'कालराति निसिचर कुल केरी।' ये रात्रि न होती तो लंका का कल्याण न होता। मेरी माँ जानकी कालरात्रि बन कर नहीं आती तो लंका मुक्त नहीं होती। और इसलिए-

कालराति निसिचर कुल केरी।
तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।।

'प्रीति' शब्द भक्तिवाचक है। भद्रकाली का अर्थ वो काली जो-

भद्रं कर्णेभिः श्रुणुयाम देवाः। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवागँसस्तनूभिः। शेमदेवहितं यदायूः।

ये भद्रकाली है। कपालिनी; युद्ध के मैदान में रामकथा में कपालिनी का भी वर्णन है। जो चामुंडा का अनेक रूप प्रगट होता है और भूत-पिशाच ये सब नाचते हैं। चामुंडा अनेक प्रकार से गाती है और मुंड के कपाल, ताल के कपाल लेकर युद्ध के मैदान में गान करने का तुलसी ने उल्लेख किया है।

भट कपाल करताल बजावहिं।
चामुंडा नाना बिधि गावहिं।।

कर कपाल। हाथ में कपाल लेकर बजा रहे हैं। ये भीषण दृश्य है कि किसी का कपाल लेकर बजाना। लेकिन ये एक अर्थ में करताली होती है। एक कपाल जो हाथ में ताल-ताली होती है। लेकिन तुलसी ने कहा, रामनाम के साथ करतारी लगाने से 'मेटत कठिन कुअंक भाल के।' माँ का युद्ध का वर्णन भी आदमी के नसीब को बदल देता है, इसलिए नसीब को संगीत में परिवर्तित कर देता है। ये कपालिनी है। दुर्गा; 'दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन।' क्षमा; 'अनुचित बहुत कहेउ अग्याता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।।' रामरूप क्षमाशील है। 'सुमिरि सिवा सिव पाए पसारूं।' शिवा, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री। 'उद्भव स्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं।' सबको धारण करनेवाली ये धात्री है। सबको लिए हुए ये माँ बैठी है। 'सौन्दर्यलहरी' में भगवान शंकराचार्य कहते हैं कि हे माँ, श्री तत्त्व धारण करनेवाली धात्री भी तो तू है। 'शिवः शक्त्यायुक्तो।' शिव शक्तियुक्त है। शिवतत्त्व को धारण करनेवाली तू धात्री है।

प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार।।

स्वाहा; अंततोगत्वा मैं इस कथा से बोलने लगा हूं कि अब कोई उद्देश नहीं रहा है। सब स्वाहा। 'इदं अग्नये न मम।' ममता का बलिदान। अहंता का बलिदान। मूढ़ता का बलिदान। स्वाहा। स्वाहा। क्या देती है 'रामायण?' समर्पण; स्वाहा करना सिखाती है। उर्मिला ने कितना स्वाहा किया! मेरी माँ जानकी ने कितना स्वाहा किया! मौन मांडवी ने कितना स्वाहा किया! आप सोचिए, सब स्वाहा के पात्र हैं। और जो अर्पण करते हैं उसको 'स्वधा' रूप। भीलनी जूठे बोर अर्पण करती है तो मेरा राम वहां स्वधा रूप हो जाता है। वहां धारण कर लेता है।

तो बाप! मंत्र, यंत्र, तंत्र। जड़ परंपरा या थोड़ी जो परंपरा हो; सिद्धों की परंपरा या शुद्धों की परंपरा हो उसमें मुझे जाना नहीं है ज्यादा। लेकिन आपने पूछा है; प्रश्नों के द्वारा आपने जिज्ञासा की है। पूछो इन शक्तिपीठवालों को। सप्तमी की रात्रि और अष्टमी की करीब-करीब सुबह से पहले का वक्त। तंत्र उपासक उसको भयानक रात्रि मानते हैं; काली रात्रि मानते हैं; महारात्रि मानते हैं। यद्यपि ये मेरा पंथ नहीं है। मेरा पंथ तो है रामभजन। लेकिन ये सब है उपासना पद्धति तो मैं उसकी आलोचना न करूं। लेकिन गंगा बह रही है इसी गंगाजल से लेकर, पवित्र माँ विराज रही हैं उसके पावित्र्य को लेकर कुछ बातों को स्नान करा दो।

एक युवक ने पूछा है, 'बापू, जय सियाराम, 'माँ विंध्यवासिनी स्तोत्र' में सोलहवें श्लोक में ऐसा कहा गया है, 'विंध्येचैव जगतश्रेष्ठे तव स्थानंहि शाश्वतं। काली काली महाकाली सिधुमांसं पशुप्रिये।' करूं अर्थ? पचेगा? मोरारि बापू ऐसे सरल-तरल खुराक है; सबको पच जाता है। लेकिन कभी-कभी परंपरावादियों को न भी पचे! फिर मैं कहूं, मैं परंपरावादी नहीं। लेकिन मेरी प्रवाही परंपार है। मैं शंकराचार्य की परंपरा को कैसे भूलूं? मैं रामानुज की परंपरा को कैसे भूलूं? मैं वल्लभ की परंपरा को कैसे भूलूं? मध्वाचार्य की परंपरा को कैसे भूलूं? हमारी निम्बार्कीय परंपरा को कैसे भूलुं? लेकिन ये गंगा की तरह है। इसलिए हमारे यहां गुरु आश्रित परंपरा में जो दीक्षित होते हैं वो पहले जब मंगलाचरण करे तो कहेंगे, 'वंदे गुरुपरंपरा।' गुरु तो गंगा है। गुरु कोई जड़ होता है? जड़ हो वो गुरु नहीं। देश-काल के अनुसार सूत्रों में संशोधन करे वो गुरु। रुचिभिन्न व्यक्तियों के सामने उनकी रुचि के अनुसार उनके जागरण के भिन्न-भिन्न प्रयोग करे वो गुरु। गुरु अंदर जो पिंड में ब्रह्मांड भरा है इस पिंड का उद्‌घाटन करके हमें ब्रह्मांड के साथ लय कर देता है।

तो जिसकी जो पद्धति है उसको प्रणाम। उसका फल जो मिलता है वो भोग पाये। लेकिन मुझे पूछा है तो कहूं; यहां एक श्लोक में ऐसा अर्थ है कि हे काली, महाकाली, पशु के कच्चे मांस की आप प्रेमी हैं और पर्वतराज विंध्य पर्वत पर आपका निवास है। 'बापू, मेरा प्रश्न है, क्या माँ कच्चे मांस की प्रेमी हो सकती है? यदि है तो मैं देने को तैयार नहीं हूं। देनेवाले को माँ कभी माफ़ करेगी?' प्रश्न है एक युवक का। 'बापू, मूझे लगता है प्रकाशक ऐसा श्लोक न छापे तो कई पशु, कई पंखी हत्या से बच जा सकते हैं।' प्यारा प्रश्न है। संशोधन होना ज़रूरी

है। अब मैं समझता हूं कि परंपरावादियों को ये मुश्किल तो पड़ेगी। ये कैसे? वाममार्गी लोग जो होते हैं न! यहां भी प्रयोग हुए ओलरेडी कल रात को। मैंने आज अखबार में पढ़ा। यहां अष्टमी की पूर्वरात्रि को बहुत तंत्र साधनाएं होती है। और स्वाभाविक है, हर शक्तिपीठों में ये होता है। ये साधनाएं है, अवश्य। उसकी आलोचना न की जाये। लेकिन जो करे, करे। आज की युवानी को प्रेरित न करे। प्लीज़। मैं प्रार्थना करता हूं धर्म जगत को। आज की युवानी सिद्ध होना नहीं चाहती, शुद्ध होना चाहती है। और उसको सिद्ध बनाने की कोई ज़रूरत नहीं। जो-जो करते हैं, सब इतने सिद्ध है। आप हमारे लिए काफ़ी हो।

मेरे देश को, मेरी सुंदर पृथ्वी को सिद्धों की नहीं, शुद्धों की ज़रूरत है। और शुद्ध किसको कहते हैं तुलसी? शुद्ध भी नहीं, तुलसी एक ओर शब्द लगाते हैं, 'संत विशुद्ध मिलहिं परि देही।' ऐसे संतों की ज़रूरत है जो शुद्ध भी नहीं, विशुद्ध हो। शुद्धि दो प्रकार की होती है। कई महापुरुष अंदर से बिलकुल नितांत शुद्ध होते हैं लेकिन उसकी अवधूती ऐसी होती है कि बहिर् से देखने में लगे कि ये आदमी कैसा होगा? अवधूती ऐसी होती है। परमहंसी अवस्था ऐसी होती है। विशुद्ध उसको कहते हैं जो अंदर से भी पवित्र है और बाहर से भी पवित्र है। अथवा तो तुलसी कहते हैं, मुझे ऐसे संत की ज़रूरत है, 'तुलसी ऐसे सीतल संता।' शीतल संत। राष्ट्रीय संत की, वैश्विक संत की बहुत ज़रूरत नहीं।

अच्छी सोबत करो युवान। तुम कितने ही नीचे हो, आकाश में चढ़ जाओगे। और बुरी संगत करोगे तो कीचड़ हो जाओगे। और यदि आप अच्छी संगत करोगे तो कीचड़ से कमल हो जाओगे। कबीर साहब कितने पढ़े थे? और मैं कबीर साहब को इसलिए याद कर रहा हूं; कबीर साहब ने 'मांस' शब्द की व्याख्या की है। पंडितों की व्याख्या नहीं है। ये पहुंचे हुए जागृत फ़कीर की व्याख्या है। काशी में रहकर जो आदमी विद्रोह करता था; मशाल लेकर घूमता था। कितनी परंपरा तोड़ी साहब! सब लोग मुक्ति के लिए काशी जाते हैं। और ये आदमी मुक्ति के पहले काशी छोड़कर मगहर चला गया। भ्रांति तोड़ो। याद रखना युवान भाई-बहन, मुक्ति भूमि आधारित नहीं है, भूमिका आधारित है। इसके लिए भूमिका बन जाये। मुक्ति मुठ्ठी में है। रामभजन की भूमिका बताओ।

कबीर ने देखा होगा उस समय काशी में भी भैरवपूजा होती। काशी का भैरव बहुत प्रसिद्ध है। यद्यपि 'शिवसूत्र' में तो लिखा है, 'उद्यमो भैरवः।' तू उद्यम कर। तू पुरुषार्थ कर। तू भजन कर। उद्यम ही तेरा भैरव है। युवान भाई-बहन, तुम धंधा करो, ओफिस जाओ, तरक्की करो, पढ़ो-लिखो, दुनिया के साथ कदम मिलाओ ये उद्यम ही भैरव है। इसलिए कबीर कहते हैं, 'कह कबीर कछु उद्यम कीजे।' तो किसी ने कबीर साहब को पूछा, ये सब कुछ ऐसे प्रयोग करनेवाले ये मांस भक्षण की बात करते हैं, बलि चढ़ाते हैं; तो ये मांस खाते हैं, चढ़ाते हैं उसका क्या अर्थ है? तो कबीर कहते हैं; ये कोई शास्त्रीय अर्थ नहीं होगा कबीर के पास। याद रखना, शास्त्र पीछे रह जाते हैं, कबीर आगे निकल गये। शास्त्र को ज़रूरत हो तो कबीर के पीछे जाये। इसका मतलब शास्त्र की उपेक्षा नहीं है। लेकिन कई महापुरुषों को जब समुद्र मिल जाता है तब डबरा छोड़ देते हैं। आदमी ओवरटेक कर लेता है। शास्त्र पीछे रह जाते हैं।

तो कबीर का अर्थ शास्त्र से नहीं निकलेगा। कबीर का अर्थ भजन प्रमाण है। न प्रत्यक्ष प्रमाण; न अनुमान प्रमाण; न वेद प्रमाण। तो कबीर कहते हैं, मांस का मतलब है, माँ का संस्मरण करो; इसका अर्थ है मांस। केवल माँ को स्मरो। केवल यही अर्थ। युवान भाई, ये नूतन अर्थ मैं तुम्हारी जेब में डाल रहा हूं। बाकी जो करे उसको करने दो। तुम पीछे मत जाओ। माँ कहती है, मांस मत खाओ, मुझे खाओ। माँ को खाना यानी ओशो कहते थे, गुरु को भोगो। गुरु को खाओ। गुरु को पीओ। गुरु को पचाओ। माँ हमारा भोग है। हम माँ को पी जाये। शराब क्यों पीते हो माँ के नाम से? माँ को खुद पीओ। पूरा मयखाना पीओ। पैमाने क्या पीते हो? आये हो तो दो चौपाई के घूंट लेकर जाओ यार! एक-दो 'मानस' के छंद पीओ। छलाछल हो जाओगे। माँ की स्मृति। माँ का निरंतर स्मरण यानी माँ को पीना, माँ को खाना। हमारे निम्बार्कीय परंपरा में जिस परंपरा में मैं हूं, उसमें धामक्षेत्र जब बुलवाते हैं तो उसमें पूछा जाता है, आपका आहार क्या है? तो हमें बोलना पड़ता है, हरिनाम आहार। और हमारी गंगासती कहती हैं-

हे जी जेने सदाय भजननो आहार...

एक युवा गज़लकार मेरे देश का, हिंदी भाषा का; छोटी उम्र में चला गया। दुर्भाग्य देश का! वरना उससे बहुत उम्मीद की जाती थी। उसने लिखा है-

मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूं।
वो गज़ल आपको सुनाता हूं।

मैं जिसे पीता हूं, खाता हूं वही चौपाई आपको सुनाता हूं। आप माँ को खाओ, माँ को पीओ। तो कल इस भूमि पर भी दो प्रकार की साधना हुई। आज अखबार में भी उसकी नोंध है। मैंने ग्रंथ थोड़े देखे थे गुरुकृपा से तो पता था। दो प्रकार की साधना अष्टमी की पूर्व रात्रि में होती है। उसमें एक वाम साधना होती है; एक दक्षिण साधना होती है। और यहां भी हुई दोनों। अब जो वाम साधना तंत्र के है इन लोगों ने क्या किया? मैं आलोचना के रूप में नहीं कह रहा; अब इन महापुरुषों ने क्या किया? पशुबलि दी। काले कपड़े पहने। तंत्र में बहुत प्रकार की पूजन की विधि है। उसमें मैं न जाऊं। कोई ऐसा श्रीमंत हो तो स्वर्ण का यंत्र बना लेते हैं। जैसे श्रीयंत्र बनता है। जैसे बहुधा यज्ञों में शाक्त परंपरा में हमारी यज्ञवेदी पर एक अग्र भाग में जो बनाया जाता है। कई विचित्र यंत्र में फिर पूजा करते हैं। और पांच वस्तु का सेवन करते हैं। वाम मार्ग में पांच 'म'कार का सेवन होता है। इसमें मांस का सेवन होता है। दूसरा मद्य। तीसरा मीन, मछली। चौथा मैथुन। और पांचवीं मुद्रा। पांच 'म'कार। तंत्र की वाम साधना। दक्षिण साधना भी तंत्र की की गई। उसमें सफ़ेद फूल चढ़ाया। शुद्ध घी की ज्योति जलाई। माँ के पवित्र नाम का उच्चारण किया। ये भी पक्ष है। दक्षिण पंथ उसको कहते हैं। फिर शुद्ध घी की धीरे-धीरे आहुतियां दी गई। बलि के रूप में जायफल और नीबू चढ़ाया।

अब आप मुझे कहे कि बापू, परंपरा में जो वाममार्ग की पद्धति है वो ही तो ठीक है। हमें करने दो। तो करो! लेकिन फिर भी आप मुझे पूछो कि ये वाम मार्ग और ये दक्षिण मार्ग। 'मानस' कोई तीसरा मार्ग दिखायेगा? हां, वो है मेरे 'मानस' का मध्यम मार्ग। बुद्ध ने यही मार्ग कुबूल किया था। एक ओर हिंसा चल रही थी। एक ओर तामसी तपस्या की बोलबाला थी। खुद ने तपस्या से अपने शरीर को निचोड़ डाला। अनुभव के बाद बुद्ध अपनी आदेश देशना में कहते हैं, मध्यम मार्गी होओ। हिंसा छोड़ो।

हमारी चर्चा चल रही है कि है कोई बीचवाला मार्ग? 'रामचरितमानस' कोई संशोधन दे पाएगा जिसको मैं वैश्विक ग्रंथ कहता हूं; अंतर्ब्रह्मांडीय ग्रंथ कहता हूं। ये मेरी अपनी श्रद्धा है। उसमें कोई है संशोधन? है, है, है। प्रस्तुत है। मेरी व्यक्तिगत श्रद्धा है। इस विश्व को जब-जब ज़रूरत पड़ी तब मेरे मनीषियों ने जो ऋचाएं प्राप्त की है, लोक मंगल के लिए विस्तार कर दिया। जब-जब ज़रूरत पड़ती है, ईश्वर का अवतार होता है युगे-युगे। वैसे प्रत्येक काल में शास्त्र का भी अवतार होता है। जब ज़रूरत पड़ी तब ये 'भक्तमाल' आया। ये अवतार नहीं तो क्या है? मोरारि बापू की श्रद्धा कहती है, ये एक अवतार है। जब ज़रूरत पड़ी तो ज्ञानेश्वर 'ज्ञानेश्वरी' लाये। ये अवतार नहीं तो क्या है? वेद आये; षडांग शास्त्र आये; उपनिषद आये; महाकाव्य के रूप में ग्रंथ आये; संहिताएं आई; स्मृतियां आई। सब अवतार हैं छोटी-बड़ी कला के। किसी की पांच कला। किसी की षोऽश कला से भी ज्यादा। 'मानस' पूर्णावतार है।

रामकथा- 'रामचरितमानस' शैलपुत्री है। कहां से आई? जहां से प्रगट हो, जो प्रगट हो, जिससे प्रगट हो उसको उसकी नंदिनी कही जाती है। गंगा तो ब्रह्मा के कमंडल से आई; विष्णु के चरण से आई। कमंडल में गई। शिव जटा में आई फिर निकली। लेकिन तुलसी कहते हैं-

जय जय भगीरथनंदिनि मुनि-चय चकोर-चंदिनि।
नर-नाग-बिबुध-बन्दिनि जय जहु बालिका।

जहु ऋषि की तू बालिका है। तू ऋषि कन्या है। 'जय जय भगीरथनंदिनि।' गंगा पर कोई ऋषि-मुनि स्तोत्र लिखे बिना नहीं रहा सका। चाहे श्लोक-कवि हो या लोक-कवि हो, गंगा आकर्षित करती है। युवान भाई-बहनों, तुलसी ने जो गंगा का ज़िक्र किया है; कभी गंगा के तट पर बैठने का अवसर मिले तो तुलसी की गंगा-स्तुतियां पढ़ना। माँ राज़ी हो जाएगी। उसकी तरंग तुम्हारी ओर आएगी। 'जय जय भगीरथ नंदिनि।' तो उसको नंदिनी-भगीरथनंदिनी कहा। तो क्या ये ('मानस') शैलपुत्री नहीं है? नवो रूप है 'मानस।' इसलिए ये अखिल ब्रह्मांडीय ग्रंथ है, यस। कभी

परशुराम आये; कभी वामन आये; कभी मत्स्यावतार हुआ; कभी कश्यप हुआ; कभी नृसिंह हुआ। जब-जब ज़रूरत पड़ती है, शास्त्र उतरते हैं। क्योंकि ये सब उपकारी तत्त्व हैं। परहित करनेवाले तत्त्व हैं; आते रहते हैं।

इतने 'मानस' के पाठ चलते हैं। मैं बहुत राज़ी हूं साहब! देश-विदेश में भी इस नरवात्रि में 'मानस' के परायण हो रहे हैं। ओलवेज यंग ये सद्ग्रंथ है। मैं तो कहता हूं, पाठ न करो, कोई चिंता नहीं। तुम्हारे बक्से में 'रामायण' रखो साहब! ये तुम्हारा और मेरा परिचय है इस विश्व में। ये आइडेंटिटी कार्ड है। जो आधार कार्ड है न आजकल दुनिया में। लेकिन ('मानस') हमारा सबसे बड़ा आधार कार्ड है।

तो इस 'मानस' में कोई उपाय है कि तंत्र में ये वाम पक्ष, ये दक्षिण पक्ष? है, है। कबीर का मांसवाला अर्थ मैंने आपको सुना दिया है। जो पंच 'म'कार की बात वामपंथी तांत्रिक करते हैं उसमें मीन की बात है। मीन क्या है? इसकी साधना करनी है? मीन को स्वीकार करो। तमसा के तट पर जब राघव चले, तब क्या था? तुलसी की पंक्ति देखिये-

निंदहिं आपु सराहहिं मीना।

माँ को खाओ, मांस नहीं। माँ को पूरी की पूरी पी जाओ। माँ की स्मृति। तो मीन को मैं इस रूप में रखना चाहता हूं। और मद्य। वाम मार्ग में मद्य का प्रयोग। मद्य क्या है?

जाहिं सनेह सुरा सब छाके।

भगत शिरोमणि भरतजी की चित्रकूट यात्रा। तुलसी कहे, सब नशे में हैं। लेकिन कौन से? 'सनेह सुरा।' मद्य सेवन करना है तो प्रेम की प्याली पीओ। जिस प्रेम माधुरी को नारद 'प्रतिक्षण वर्धमानं' कहते हैं। पीओ तो ऐसा पीओ। इक्कीसवीं सदी है युवान भाई-बहन, जिसको रास आये सो करे। मद्य, मांस, मीन और मैथुन। तुलसी मैथुन की चर्चा नहीं करते। तुलसी मंथन की चर्चा करते हैं। छोड़ो मैथुन पूजा के रूप में; तंत्र के रूप में। छोड़ो; मैं इसमें न जाऊं।

प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर।।

तंत्र के मैथुन में काम मंथन की बात है। वहां मैथुन के केंद्र में काम है। और तुलसी का जो एक मार्ग है वहां मंथन में काम केन्द्र में नहीं, राम केन्द्र में है। 'प्रेम अमिअ।' प्रेम का अमृत निकालना है। मंथन ज़रूरी था। लेकिन वहां कामवृत्ति का मंथन है; यहां रामवृत्ति मंथन बनकर आई है। कृपासिंधु रघुबीर। पांचवां, मुद्रा।

बहुरि बदन बिचु अंचल ढंकी।

मुद्राएं देखो। ये भक्ति की मुद्रा है। ये पराम्बा की मुद्रा है। ये परम आह्लादिनी शक्ति की मुद्रा है।

मुझे एक श्रोता ने कहा कि बापू, मैं आपकी कथा सालों से सुनता हूं। 'रामचरितमानस' में आठ शक्तियों का वर्णन है। इसमें चार शक्ति उग्र हैं, चार सौम्य है। अच्छी बात कर दी। आप ऐसा मंथन कर रहे हैं वही 'मानस' रूपी दुर्गा की उपासना है। मेरे श्रोता कितना सुंदर मंथन कर रहे हैं! मैं सलाम कर रहा हूं इस श्रोता को। कभी शायद इस पर बोला गया है। लेकिन मुझे स्मृति तो दिला ही। स्मृति कोई कृष्ण के ही प्रसाद से आये ऐसा नहीं; किसी के भी प्रसाद से आ सकती है। याद रहना या तो याद करना बहुत प्यारी विधा है। परमात्मा है ये स्मृति का निधान है। परमात्मा को याद बहुत रहता है। परमात्मा को सब कुछ याद रहता है। ये हम जीव हैं न साहब! सब हम भूल जाते हैं। अपने हित की बात हो वो याद रखते हैं।

व्हाटस एप्प-फेस बूक ये देखने के लिए एक समय निश्चित करो। मैं आपका विरोध नहीं कर रहा हूं। हर जगह बैठे-बैठे ये मत करो। और कथा में तो ऐसा करना ही मत। हां, ये ठीक है आप कोई सूत्र टेलिफोन में लिखना चाहते हो तो लिखो। कथा सुनने आये हो तो कथा ही सुनो। हमारे महात्मा लोग आंत तोड़ रहे हैं विश्व के लिए। उसकी मज़ाक मत उड़ाओ! मोबाईल नहीं, माला रखो। मोबाईल उपयोगी है, रखो। मैं भी रखता हूं। लेकिन ज़रूरत हो, अनिवार्य हो तो। तरक्की ज़रूरी है, ज़रूरी है, ज़रूरी है। लेकिन इससे भी ज़रूरी है विश्राम। मत अवसर चुको।

मुद्राएं रखो तो भक्ति की मुद्राएं रखो। ऐसे संकेत, ऐसी नहीं जो तुम्हें मोह में आकर्षित करें; तुम्हारा चित्त गैरकाबू हो। इससे बचें। कई लोग ऐसे ही अपने पते की बात याद रखते हैं! तो परमात्मा सब याद रखते हैं; जीव अपने हित का ही, स्वार्थ का ही; बाकी सब भूल जाता है! हम स्वार्थ की स्मृति रखते हैं। जीव है; इसमें आलोचना की कोई बात नहीं।

मेरे श्रोता ने मुझे स्मृति दिलाई कि 'मानस' में आठ शक्ति हैं। चार उग्र और चार शांत। मैं कितना राज़ी होता हूं कि कथा का फल लग रहा है। सुनने के बाद श्रोता चिंतन करते हैं। 'मानस' का स्वाध्याय करके निकाल के देते हैं। बहुत खुश हूं। कौन नवदुर्गा है 'मानस' में? कौन महाशक्ति है 'रामचरितमानस' में? 'रामायण' मैया में एक सौम्यरूप शक्ति है। कौन-सी? बड़ा प्यारा संशोधन। एक सौम्य शक्ति का नाम है अनादि शक्ति। प्रमाण-

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि।
सदा संभु अरधंग निवासिनि।।

अनादि शक्ति जो शंकर का अर्धांग है। सौम्यरूप है वहां माँ पार्वती। दूसरी है आदिशक्ति। वो भी सौम्यरूपा।

बाम भाग सोभति अनुकूला।
आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला।।

तीसरी-

नारद बचन सत्य सब करिहउँ।
परम सक्ति समेत अवतरिहउँ।।

तीसरी सौम्य शक्ति। चौथी-

अकल अगुन अज अनघ अनामय।
अजित अमोघसक्ति करुनामय।।

चौथी सौम्य शक्ति है अमोघ शक्ति। अब चार उग्र शक्ति-

सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।

ब्रह्म द्वारा दी गई प्रचंड शक्ति लक्ष्मण के सीने में जो डाली गई। ये प्रचंड शक्ति उग्र स्वरूप है। उग्र शक्ति का जो प्रमाण है 'मानस' में-

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला।
गई गगन सो सक्ति कराला।।

कराल शक्ति ये सब उग्ररूपा हैं। तीव्र शक्ति; उग्र शक्ति का रूप।

छाड़िसि तिव्र सक्ति खिसिआई।
बान संग प्रभु फेरि चलाई।।

तो तीव्र शक्ति, प्रचंड शक्ति ये सब उग्र शक्ति के रूप। आठवां-

आवत देखि सक्ति अति घोरा।
प्रनतारति भंजन पन मोरा।।

जो शक्ति आ रही थी विभीषण पर अति घोर शक्ति। 'तो बापू, शक्ति तो नौ है। दुर्गा तो नौ है। यहां आठ है। चार सौम्य, चार उग्र।' लेकिन परम गुणातीत एक नौवीं शक्ति है, जो 'मानस' में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कैसे भी गुरु की कृपा से खोजनी पड़ती है; वो शक्ति है आह्लादिनी शक्ति। जैसे 'भागवत' में कृष्णावतार में आह्लादिनी शक्ति राधेजू। और 'मानस' में आह्लादिनी शक्ति हमारी किशोरीजू। ये नौवीं सर्व शिरोमणि आह्लादिनी शक्ति।

तो बाप! वाम मार्ग की तंत्रसाधना जिसमें पंच 'म'कार की बातें होती हैं; दक्षिण तंत्र की थोड़ी अच्छी, थोड़ी संशोधित साधना। लेकिन दोनों से विलक्षण ये 'मानस' मैया अथवा तो तुलसी- दर्शन में जो है ये पंच 'म'कार। अथवा तो 'विनयपत्रिका' में जाओ तो एक ओर दर्शन मिलेगा। बकरे का बलि चढ़ाना है कि जायफल चढ़ाना है कि नीबू चढ़ाना है कि कोला काटना है। मैं तो जो सोचता हूं, आपके आशीर्वाद से करने की कोशिश करता हूं। मैं कहता हूं कि ये पूरा का पूरा फल क्यों न चढ़ा दिया जाये? ये काटने की बात क्यों करते हो? पूरा फल ही दे दो न! क्योंकि आप फल को काटोगे, अंदर रंग डालोगे, लाल रंग; ये तुम्हारे मन को फुसलाने की बात है। क्योंकि वृत्ति तो काटने की रही! चाहे किसी की गर्दन काटो या कोई फल काटो। सवाल है, वृत्ति निर्मूल की जाये। अब ये श्रद्धा की परंपरा का विषय है। मैं इसमें आड़ बनना नहीं चाहता। लेकिन मैं तो नारियल फोड़ने की भी मना करता हूं। क्योंकि हम में एक वृत्ति तो तोड़-फोड़ की है। वृत्ति का नाश होना चाहिए। ऐसे ही नारियल चढ़ा दो न! ये हिंसावृत्ति कहां से आ गई, मेरी समझ में नहीं आता! इसलिए प्लीज़, प्लीज़, मुझे संतगण आशीर्वाद दें। हर रूप माँ के हैं इसमें-

या देवी सर्व भूतेषु अहिंसारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

तो तुलसी किसी मार्ग का अनादर नहीं करेंगे। किसी का खंडन क्यों न हो? अपनी अनुभूति के द्वारा एक सुंदर ओर रंग भर दो कि ओर रंग फीके हो जाए। संवाद रचो। बलि चढ़ाना है तो तुलसी को पूछो। एक नये बलि की प्रेरणा 'विनयपत्रिका' में देते हैं। 'बीर महा अवराधिये।' सिद्धि चाहिए न! तंत्र के प्रयोग करके, ये करके सिद्धि चाहिए न! तो ले, तुलसी कहते हैं, कर अनुष्ठान; कर आराधन।

बीर महा अवराधिये, साधे सिधि होय।
सकल काम पूरन करै, जानै सब कोय।।

ये लोग तंत्र के प्रयोग करके मनोकामना पूर्ण करने की ही तो बात करते हैं। आप 'सौंदर्यलहरी' लीजिए। जिन-जिन विद्वानों ने भगवान शंकर रचित 'सौंदर्यलहरी' के सौ श्लोक जो दिये हैं, इनमें प्रत्येक श्लोक के साथ 'सौंदर्यलहरी' के विद्वानों ने हेतु जोड़े हैं। शरीर की पीड़ा हेतु ये श्लोक। निवारण सिद्धि के लिए ये श्लोक। धनप्राप्ति के लिए ये श्लोक। क्या-क्या चोकलेट दी है! मृत्यु निवारण के लिए ये श्लोक। फिर उसमें बीजमंत्र डालो। तुम्हें ये करना है, अनुष्ठान करना है, आराधन करना है, मेरे गोस्वामी का मार्ग देखो। जो मार्गमुक्त मार्ग है; विशेषणमुक्त मार्ग है।

'रामचरितमानस' शैलपुत्री है। कहां से आई? जो जहां से प्रगट हो उसको जिससे प्रगट हुई हो उसकी नंदिनी कही जाती है। गंगा तो ब्रह्मा के कमंडल से आई; विष्णु के चरण से आई। कमंडल में गई। शिव जटा में आई फिर निकली। लेकिन तुलसी कहते हैं, 'जय जय भगीरथनंदिनि।' गंगा पर कोई ऋषि-मुनि स्तोत्र लिखे बिना नहीं रहा सका। चाहे श्लोक-कवि हो या लोक-कवि हो, गंगा आकर्षित करती है। युवान भाई-बहनों, तुलसी ने जो गंगा का ज़िक्र किया है; कभी गंगा के तट पर बैठने का अवसर मिले तो तुलसी की गंगा-स्तुतियां पढ़ना। तो उसको भगीरथनंदिनी कहा। तो क्या ये 'मानस' शैलपुत्री नहीं है?

महादेव ने की हुई स्तुति सत्य है, अत्रि-स्तुति प्रेम है और 'रुद्राष्टक' करुणा है

बाप! आज आखिरी दिन है। हम सब काल, देश और संबंधों से जुड़े रहते हैं। इसके कारण न चाहते हुए भी कथा पूरी होने के बाद सब अपने-अपने आशियाने में चले जाते हैं। मैं इतना ही कहूंगा कि इस क्षेत्र में माँ की भूमि में हमें विशेष आनंद हुआ है। सबके लिए माँ के चरणों में प्रार्थना करूं कि आपको बहुत बल मिले। और इस बल का फल इस क्षेत्र को, पूरे प्रदेश को, पूरे हिन्दुस्तान को और आखिर में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' सबको इसका फल प्राप्त हो। ऐसी मेरे हनुमानजी के चरणों में मैं प्रार्थना करता हूं।

'मानस-श्री देवी', इस विचार को केन्द्र में रखते हुए हम विचारों से, वाणी से माँ की पूजा कर रहे थे नौ दिन। अर्चा-पूजा कर रहे थे। आज आखरी दिन है। माँ का चरित्र, माँ की आध्यात्मिक शक्ति, सर्वोपरि शक्ति कौन कह सकता है? मैंने आपसे कहा था कि शक्ति की उपासना में दस महाविद्या की महत्ता है। लेकिन इसमें भी मैं तीन या चार तक ही पहुंच पाया! दो-तीन दिन से मैं सोच रहा था कि आगे की महाविद्या जो भुवनेश्वरी है उसको कौशल्या के रूप में मैं प्रणाम करूं। क्योंकि मेरी समझ में भगवती कौशल्या उसके जो लक्षण हैं ये माँ भुवनेश्वरी के लक्षण है। फिर मैं एक बार 'दुर्गासप्तशती' का ये विचार आपके सामने रखूं कि 'स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।' इस जगत में जितनी स्त्री मातृशरीरा है, हे पराम्बा, ये तेरे ही तो स्वरूप है। इसलिए कौशल्या भुवनेश्वरी है। वैसे 'मानस' के ये पात्र, इसमें सुमित्राजी भी है। ये सब महाविद्या की उपासना के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष लक्षणों से जुड़ी हुई हैं। लेकिन ये सीमित समय में नहीं हो पाया फिर कभी माँ की ईच्छा होगी तो उस पर बोलेंगे। लेकिन ये कोई वादा नहीं।

तो बाप! अभी हम रामजन्म ही कर पाये हैं। और पूरी कथा पड़ी है! एक पंक्ति मुझे बल देती है; इसके आधार पे बोले जा रहा हूं। क्या? तुलसी की पंक्ति-

हरि अनंत हरि कथा अनंता।
कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब संता।।

हरि अनंत है; उसकी कथा इससे भी अनंत है। कैसे उसको समय में आबद्ध किया जाये? 'श्रीभगवद्गीता' के 'विभूतियोग' में भगवान कृष्ण अपनी विभूतियों का वर्णन करते-करते कह देते हैं कि 'नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।' मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है। भगवान की विभूतियों का यद्यपि अंत नहीं है तो स्वयं विभु का अंत कौन पा सकता है? मुश्किल है। और पराम्बा विंध्यवासिनी का पार कौन पा सकता है? ये कथा तो तत्त्वतः विंध्यवासिनी ही है, काली है, दुर्गा है, मंगला है। सब कुछ है।

जयंती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तुते।

तो रामकथा स्वयं काली है, दुर्गा है। तो एक तो आश्वासन मिलता है कि 'हरि अनंत हरिकथा अनंता।' ये बल है। इसलिए मैं अभी आठ-दस मिनट में आगे के सभी कांड पूरा कर दूंगा। क्योंकि मेरे पास शास्त्र प्रमाण है। और दूसरा आश्वासन ये मिलता है कि शंकर तो 'मानस' के आदि वक्ता है। गोस्वामीजी भी वाल्मीकि के अवतार माने गये। उसने जितना हो सके विस्तार किया। महादेव ने विस्तार किया। याज्ञवल्क्य महाराज परम विवेकी है। लेकिन बाबा कागभुशुंडि

जो नीलगिरि पर्वत पर आसन जमाये बैठे हैं, उसने जिस रूप में रामकथा को सीमित कर दिया। और उसके बाद बोलते तो रहे लेकिन उसमें रामकथा तत्त्व को जगत के दिल में स्थापित करके राम के तत्त्व को, राम के रहस्यों को, राम की वैश्विक परम चेतना को विविध प्रश्नों के जवाब में और खुद के अनुभव के रूप में 'मानस' में प्रस्तुत किया। और 'मानस' का गायन तो बिलकुल संक्षिप्त में। 'भुशुंडि रामायण' आप पढ़ते हैं। तो मुझे कोई नहीं कह सकता कि आपने क्यों संक्षिप्त कर दिया? बाबा भुशुंडि ने किया है। अब मैं उसी के न्याय से चलूं।

प्रभु अवतार कथा पुनि गाई।
तब सिसु चरित कहेसि मन लाई।।

राम का अवतार हुआ। भगवान के बाल चरित्र की कथा कही। तो विश्वामित्र बाबा आ गये। सीता-राम के विवाह की कथा बाबा ने गाई।

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा।
पुनिनृप बचन राज रस भंगा।।

भगवान को राजतिलक मिलना था। राज रस भंग हो गया। भगवान राम, लखन, जानकी वनयात्रा पर निकले। गंगा के तट पर गये। केवट के प्रसंग को सुनाया। भगवान वाल्मीकि से मिले। वाल्मीकि के संकेत पर भगवान चित्रकूट में निवास करते हैं। गंगा के तट से लौटाया गया सुमंत सचिव अयोध्या आते हैं। राम नहीं आयेंगे ये पक्की बात जानने के बाद महाराज ने प्राण त्याग दिया। भरत आये। राज्य का इन्कार करते हुए कहा, मैं सत्ता का आदमी नहीं, मैं सत् का आदमी हूं। मैं किसी पद का आदमी नहीं, मैं पादुका का आदमी हूं। यदि मेरा सुख चाहते हो तो हम सब चित्रकूट जाये। सब चित्रकूट गये। बहुत सभाएं हुई। प्रभु ने भरत को समझाया। और प्रेमी तो समर्पण करता है। भगवान के सामने सजल नेत्र भरत ने कहा-

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।
करुना सागर कीजिए सोई।।

और शरणागति केवल भक्त ही भगवान की करता है ऐसा नहीं; आश्रित अपने परम श्रद्धेय की करता ऐसा नहीं। शरणागति दोनों ओर से होती है। यहां जितना आश्रित समर्पण करता है इतना ही शायद सवाया समर्पण जो आश्रय स्थान है वो करता है। ये नियम हैं। ये न करे तो दोनों अधूरे है। शरणागति दोनों के बीच में होती हैं, एक पक्ष में नहीं। हमारे यहां शरणागति के नाम पर धोखे हुए हैं; प्रपंच हुए हैं; बहुत गड़बड़ें हुई हैं! इसमें यही एक सिखाया गया कि आश्रित ही शरणागत हो। नहीं; श्रद्धेय को भी शरणागत होना चाहिए। ये ज़रूरी है।

तो प्रभु भी समर्पण कर रहे हैं। भरत भी समर्पण कर रहे हैं। ब्रजांगना भी समर्पण कर रही हैं। भगवान कृष्ण भी समर्पण करते हैं। फिर मंज़िल निकट आये तो फिर आनंद कम हो जाता है। कई लोग मुझे कहते हैं कि बापू, तलगाजरडा के लिए जब निकलते हैं न तब जो आनंद होता है; तलगाजरडा आने के बाद सब रोकते हैं न तो सब आनंद खतम हो जाता है! ये सही बात है यार! मेरे सामने घटी घटनाओं मैं आप से कह रहा हूं। प्रतीक्षा में जो आनंद है वो प्राप्ति में कहां है? भक्त प्रतीक्षा करता है। शबरी ने कम प्रतीक्षा की? अहिल्या ने कम प्रतीक्षा की? 'मानस' के पात्रों ने प्रार्थनाएं तो की हैं। सती आदि पात्रों ने तो परीक्षा की भी कोशिश की है। विफल हो गई सती। जीते वो जिन्हों ने आखरी दम तक प्रतीक्षा की। जटायु जीत गया। आखरी दम तक प्रतीक्षा की, हरि आयेगा। मुझे कहने दो, रावण भी प्रतीक्षा में रहता था; आयेगा; कहां जायेगा मेरे पास आये बिना? इसका अवतार कार्य यदि 'विनाशाय च दुष्कृताम्' है, तो सबसे बड़ा दुष्कृत्य करनेवाला मैं हूं। बंदे के पास आना पड़ेगा। कितनी बड़ी प्रतीक्षा लेकर बैठा है ये आदमी!

हमारे यहां शास्त्रों में कहा, तुम ये करो तो स्वर्ग मिले; तुम ये करो तो मोक्ष मिले। मिले तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरे भाग का भी मैं तुमको रजिस्ट्रेशन कर दूं। मेरे भाग में थोड़ा स्वर्ग यदि हो चौपाईयां भाव-कुभाव से गाई हैं, तो मेरे हिस्से का यदि स्वर्ग हो तो मैं सार्वजनिक अनलिखित ट्रस्ट कर देता हूं कि ये तुम्हें मिल जाये। मुझे नहीं चाहिए स्वर्ग। क्यों? इसलिए कि स्वर्ग में दो तकलीफ़ है। मैंने सुना कि स्वर्ग में चाय नहीं मिलती! तो मेरा कोई रस नहीं स्वर्ग में। क्योंकि हमको तो चाय चाहिए। और दूसरा कहते हैं कि स्वर्ग में हरिकथा नहीं होती है। और जहां हरिकथा न हो वो स्वर्ग क्या ख़ाक! प्रतीक्षा करो।

श्री भरतजी चौदह साल प्रतीक्षारत रहे। और फिर आगे जयंत की कथा सुनायी। भगवान राम, लखन, जानकी अत्रि के आश्रम में आये। और अत्रिजी परमात्मा की प्रेममूर्ति स्तुति करने लगे-

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु सील कोमलं।
भजामि ते पदाम्बुजं। अकामिनां स्वधामदं।

दो-चार दिन पहले मेरे एक श्रावक ने, श्रोता ने मुझे पूछा था कि बापू, मैं 'नमामि भक्त वत्सलं।' ये गाता हूं तो मुझे बहुत अच्छा लगता है। लेकिन मैं 'रुद्राष्टक' गाता हूं तब मुझे लगता है कि उसमें मुझे इतना रस नहीं आता क्योंकि 'रुद्राष्टक' के पहले हाहाकार हुआ है। तो ये हाहाकार जैसी स्थिति में से जो स्तोत्र निकला उसमें मेरी इतनी रुचि नहीं है। लेकिन अत्रि महाराज जिस भाव में ठाकुर का दर्शन करके स्तुति करते हैं वो स्तुति मुझे प्रिय है। मेरे श्रोताओं को इस प्रश्न के उत्तर में कहूं, तीन स्तुति ऐसी है, गांठ बांध लो। मैं मेरी जिम्मेवारी के साथ बोलता हूं। एक 'रुद्राष्टक' जो स्तुति है वो भले ही ऐसी स्थिति में प्रगटी है लेकिन आप मेरी बात यदि माने तो 'रुद्राष्टक' करुणा से प्रगट हुआ स्तोत्र है। एक चीख उठी, 'नहीं महादेव, इन पर रोष न कीजिए। ये मेरा आश्रित है। उसने थोड़ा गुरु अपमान कर दिया। लेकिन हे त्रिभुवन गुरु, तू करुणा कर।' मेरी समझ में 'रुद्राष्टक' करुणा से प्रगटी हुई स्तुति है। अत्रि-स्तुति ये प्रेम से प्रगट हुई स्तुति है। लेकिन रामराज्य के अवसर पर महादेव कैलास से जिस रूप में आये वो सत्य से प्रगट हुई स्तुति है। यहां सत्य, प्रेम और करुणा से मिश्रित तीन स्तुति हैं।

जय राम रमारमनं समनं।
भवताप भयाकुल पाहि जनं।।

ये बिलकुल शुद्ध सत्य से निकली स्तुति है। अत्रि-स्तुति शुद्ध प्रेम से निकली। और भुशुंडि के गुरु के मुंह से निकली ये करुणा से निकली। इसलिए सत्य, प्रेम, करुणा से तीनों निकली है। 'मानस' में सत्ताईस स्तुति मानी गई है। सत्ताईस नक्षत्र हैं। कुल मिलाकर सत्ताईस नक्षत्र हमारे यहां खगोल में माने गये हैं। और नक्षत्र का मतलब होता है आकाश में छेद। आकाश में जहां-जहां नक्षत्र हैं वहां कुछ छिद्र है। लेकिन पुरानी परंपरा में एक ऐसा अभिप्राय है कि नवरात्रि में माता का मिट्टी का जो गरबा हम करते हैं, जिसमें छिद्र होते हैं; इसमें सत्ताईस ही छिद्र रखे जाते हैं। नौ-नौ की तीन धाराएं। ये ब्रह्मांड रूपी गरबे के सत्ताईस नक्षत्र थे।

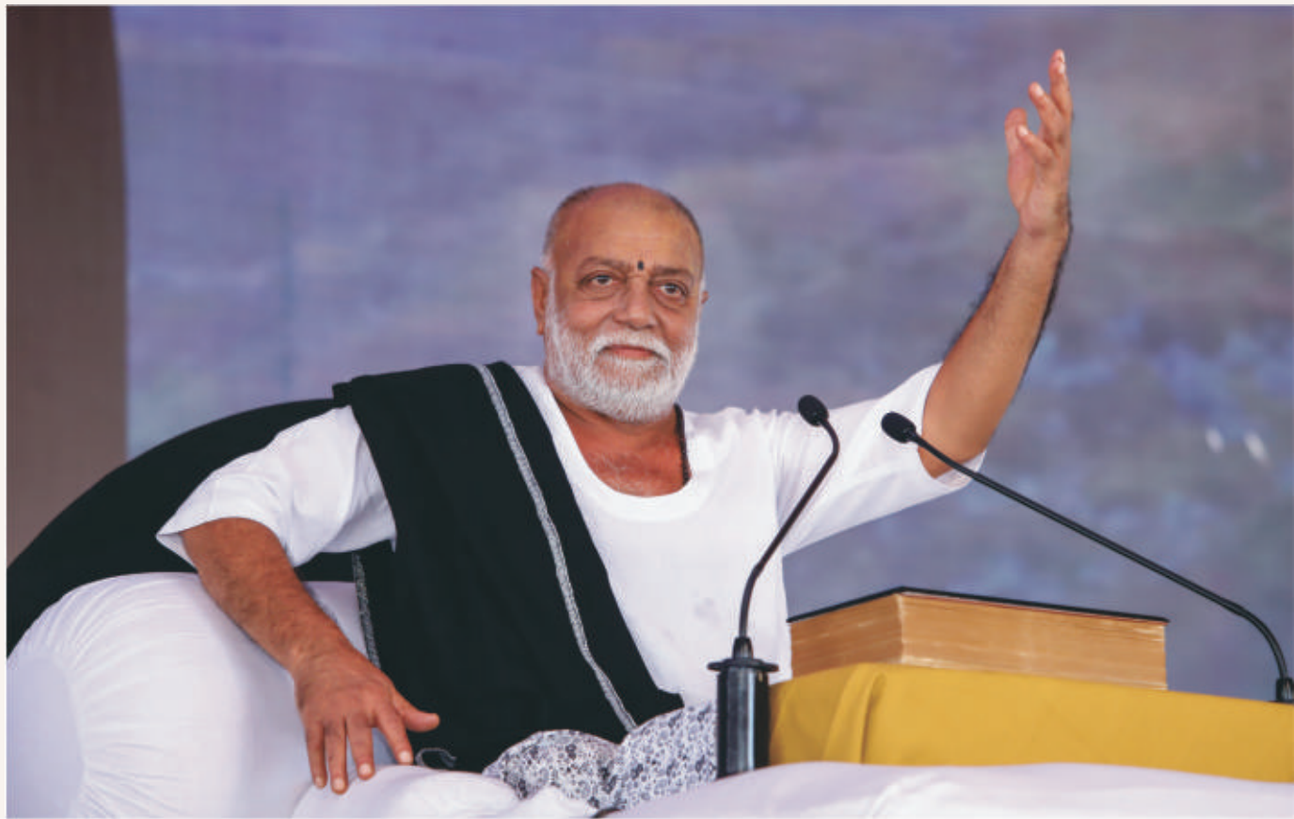

उसको हम माँ मानकर गरबा लेते हैं; रास लेते हैं। ये 'मानस' स्वयं गरबा है। ये ब्रह्मांडीय गरबा है। उसमें सत्ताईस स्तुति ये माँ के गरबे के रूप में सत्ताईस नक्षत्र की शोभा दे रही है। और बीच में जो ज्योति हम जलाते हैं ये मानो विंध्यवासिनी हो, राम हो, कृष्ण हो, शिव हो, शिवा हो, ज्योति है।

तो बाप! ये जो ब्रह्मांडीय गरबा है इसमें ज्योति स्वरूप परम्बा है। सत्ताईस नक्षत्र से किरण फूटती हैं। और उसके इर्द-गिर्द में पूरा विश्व रास ले रहा है। ये महारास है; ये परमरास है। नौ दिन नवरात्रि एक देश-काल के आबद्ध जीवों के लिए एक सीमित समय का कार्यक्रम है।

तो अत्रि और प्रभु की मुलाकात हुई। अनसूया ने जानकी को स्त्रीधर्म का लोगों के लिए, जगत की माताओं के लिए उपदेश दिया। वहीं से महात्माओं को मिलते हुए, गीधराज जटायु से मैत्री करते हुए प्रभु आगे बढ़े। लक्ष्मण जी को पंचवटी में उपदेश दिया। शूर्पनखा दंड़ित कर दी गयी। खर-दूषण, त्रिसिरा का निर्वाण हुआ। रावण मारीच को लेकर आया और माया सीता का अपहरण हुआ। प्रभु नरलीला करते हुए रोते जानकी की खोज करते गीधराज जटायु को गति देकर कबंध का उद्धार करके शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी के सामने नौ प्रकार की भक्ति का गायन हुआ।

कल शाम को मैं पूज्य महाराजश्री मलूक पीठाधीश्वर भगवान जो यहां कल से मर्कांडये पुराण की कथा शुरू हुई वहां गया। मुझे भी श्रवण लाभ मिल गया। बड़ा आनंद आया। तो जा रहा था तो एक पत्र मुझे कार में दिया गया। वो पत्र मैंने पढ़ा तो उसमें लिखा कि बापू, विंध्यप्रदेश में आपका स्वागत है। और हम बिलकुल आपको शब्द-शब्द सुन रहे हैं। लेकिन आप आठ दिन से लगे हैं हमारे ऊपर कि बलि बंद करो, बंद करो। उसने लिखा कि बलि दिये बिना माँ प्रसन्न होती ही नहीं। क्या करोगे? बलि से ही माँ प्रसन्न होती है। और माँ प्रसन्न होती है तभी धरती पर किसी न किसी बुद्धपुरुष प्रगट होता है। इसलिए बलि अनिवार्य है। मैंने तो आगे-आगे पढ़ा कि बाबा मेरे पर खफ़ा है! और रेड रंग का लिखा था ये खतरे की निशानी है! त्रिसत्य करे, बलि चढ़ाना ही पड़े, बलि चढ़ाना ही पड़े। मैं पढ़ता गया। फिर जो यू टर्न लिया, मैं पगे लागूं; प्रणाम करूं, इस ख़त जिसने दिया है। उसने लिखा है कि बापू, बलि देना ही चाहिए लेकिन हत्या के रूप में नहीं। फिर उसने ये पंक्ति लिखी इसमें मुझे याद आया कि भगवान राम शबरी से कहते हैं। वहां भी बलि दिया गया तब हुआ। मैंने कहा, क्या बात है? वो बोले, 'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।' पहली भगति संत का संग। संत का संग रूपी सिद्धि तब ही मिली जब शबरी ने कुसंग का बलिदान कर दिया; कुसंग का बलि चढ़ाया। बहुत प्यारा अर्थ निकाला। बात तो बिलकुल सही। बलि मानी बलिदान; समर्पण; बलिदान। केवल हत्या के रूप में ही बलिदान क्यों? लक्ष्मण को रामचरण सेवा और राम के निरंतर संग रहने की सिद्धि चाहिए, फल चाहिए। तो लक्ष्मण ने पूरे परिवार की बलि दे दी। जानकी का बाप जनक महाराज। क्या समृद्धि! और अयोध्या में इंद्र को ईर्ष्या हो इतनी समृद्धि है! लेकिन जानकी ने इन सभी समृद्धि की बलि चढ़ा दी राम के साथ सदैव रहने के लिए। तो ये अर्थ बड़ा प्यारा मिला मुझे। शुभ चाहिए, अशुभ की बलि देनी पड़ेगी। सत्संग पहली भक्ति है तो कुसंग से बाहर आना पड़ेगा। अरे चलो फिर हम कुसंग पे न जाए। लेकिन एक ओर साधु बैठा है एक ओर असाधु बैठा है; आपको लगे कि मुझे साधु के पास जाना है। तो तुम्हें असाधु को छोड़ना ही होगा। तभी साधु के पास जाओगे। कुसंग का बलि चढ़ाना पड़ेगा। सुखों का होम करना पड़ेगा। अपनी-अपनी सुविधाओं का हवन करना होगा।

भुशुंडि कथा गुरुड़ को संक्षेप में कहते हैं कि शबरी को भगवान ने गति दी। पम्पा सरोवर पर नारदजी से बात हुई। संतों के लक्षण की चर्चा हुई। फिर प्रभु राम-लक्ष्मण आगे बढ़े। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव था। हनुमान और प्रभु का मिलन हुआ। हनुमानजी के माध्यम से एक विषयी जीव, एक भटकाव में डूबा जीव प्रभु का सख्य पा गया। बालि का निर्वाण हुआ। सुग्रीव को राज्य मिला। अंगद को युवराज पद मिला। भगवान चातुर्मास करने के लिए प्रवर्षण पर्वत गये। वर्षा ऋतु का वर्णन। शरद ऋतु का वर्णन। सुग्रीव को थोड़ा भय दिखाया। सुग्रीव शरण में आया। और जानकी की खोज का अभियान चला। और सब अपनी-अपनी दिशाओं में भेजे गये। मिली स्वयंप्रभा। फिर संपाति बाबा मिले। और फिर हनुमानजी ने उड़ान भरी। और 'बन उजारि।' माँ सीता को ढाढ़स दिया। लंका दहन करके बाबा आ गये। भगवान लंका गये। अंगद राजदूत के रूप में गया। धमासान युद्ध हुआ। सब निर्वाण को प्राप्त करते हैं। राम और जानकी का मिलन हुआ। पुष्पक तैयार हुआ और भगवान पुष्पक पर चढ़कर आयोध्या आये। राम का अभिषेक हुआ।

कथा समस्त भुसुंड बखानी।
जो मैं तुम्ह सन कही भवानी।।

कथा पूरी थई गई यारों! लो, करो आरती। तो भुशुंडि के न्यास से भी कथा हो। क्योंकि तुलसी ने कथा के वक्ताओं को दोनों अधिकार दिये हैं। ये भुशुंडिजी ने ऐसा किया, तो कथाकारों को उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए, ज़रूर। लेकिन अधिकार तो दिया है कि 'व्यास समास स्वमति अनुरूपा।' कथा का व्यास करना, विस्तार करना

और समास-संक्षिप्तिकरण करना, वक्ता को विवेक से अपनी गुरुदत्त बुद्धि के अनुसार करना चाहिए। वक्ता को गुरुदत्त बुद्धि से, अपने विवेक से; सत्संग से प्राप्त विवेक से; ग्रंथदर्शन के विवेक से; साधुसंग के विवेक से। जब उसको विकास करना ज़रूरी हो तो व्यापक रूप में कहें। वर्ना उसका संक्षिप्तिकरण करना चाहिए। हमारे कथाकारों की एक शैली है।

तो राम राज्याभिषेक हुआ। रामराज्य का वर्णन तुलसी ने किया। मित्रगण आये थे उसको छः मास के बाद बिदा दे दी। और भगवान राम की ये ललित नरलीला के कारण जानकी ने दो पुत्रों को जनम दिया; लव-कुश जिसके नाम। रघुवंश के वारिस के नाम बताकर उसके बाद सीता का दूसरी बार का वनवास गोस्वामीजी ने नहीं लिखा। क्योंकि इसमें अपवाद है, दुर्वाद है, पूरा प्रसंग विवाद है। इसलिए तुलसी को लगा, मेरा विचार संवाद का है इसलिए मैं संवाद ही रखूं।

भगवान शंकर ने पार्वती के सामने कथा को विराम दे दिया। बाबा भुशुंडि ने खगराज गरुड़ के सामने कथा को विराम दिया। परम विवेकी मुनि याज्ञवल्क्यजी ने विराम दिया कि नहीं, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है 'मानस' में। मैं इसका यही अर्थ करता हूं गुरुकृपा से कि ये प्रयाग में कथा चल रही है इसलिए गंगा, यमुना और सरस्वती जब तक बहती रहेगी वो कथा बहती रहेगी। काश! हमारे कान सुन सुन पाये! तो बाबा भुशुंडि ने पूरा किया। बाबा भोले ने पूरा किया। याज्ञवल्क्य महाराज ने पूरा किया कि नहीं वो लिखा नहीं है। और गोस्वामीजी तुलसी भी तीन सूत्र देकर 'मानस' को विराम दे रहे हैं।

मेरे युवान भाई-बहन, पूरी रामकथा का जो एक सारसर्वस्व है; एक निचोड़; एक जूस जो है वो हे सत्य, प्रेम और करुणा। आखरी पंक्तियों में तुलसी यही कहते हैं, 'एहिं किलकाल न साधन दूजा।' इस कलियुग में ओर कोई साधन हम जैसों के लिए नहीं। 'जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।' हम देहातों में रहनेवाले, हम सामान्य संसारी जीव कहां योग साधना कर पाएंगे? कहां इतनी संख्या में जप करेंगे? कहां यज्ञ करेंगे? कहां जप-तप करेंगे? तो करे क्या? तुलसी ने कहा, कलियुग में इतना करो-

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।

तीन सूत्र। राम को स्मरो। राम को गाओ। राम को सुनो। गुरुकृपा से मेरी व्यासपीठ ने इसका अर्थ ये निकाला कि यही है सत्य, प्रेम, करुणा। राम को स्मरो। राम क्या है? सत्य। लोग स्वाभाविक बोलते हैं, रामनाम सत्य है। तो 'रामहि सुमिरिअ' ये सत्य है। 'गाइअ रामहि' राम को गाओ। और मैं बीच में भी बोल गया कि प्रेम के बिना गाया नहीं जाता। जो प्रेम करता है वो गायेगा ही। मीरां ने गाया। इसलिए 'गाइअ रामहि' वहां प्रेम है। और 'संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि' कुछ समय के लिए आप सुनो वो शायद आपकी योजना भी हो। लेकिन सतत रामकथा सुनो ये किसी की करुणा के बिना संभव नहीं। निरंतर गाना; निरंतर रामरटन करना। निरंतर प्रभु की कथा सुनना। निरंतर मीन्स जब-जब योग बने। मैं आपको ये न कहूं कि अपना दायित्व छोड़कर व्यासपीठ के पीछे-पीछे भागते रहो। नहीं। अपना-अपना काम करो। मेरी तो बहुत वैश्विक उद्घोषणा है ख़ास करके युवान भाई-बहन, एक साल में मुझे नौ दिन दे मैं उसको नवजीवन दूंगा। ये हमारा वादा है। आपको मुझे नौ दिन देना है बस। मैं बार-बार गाता हूं तो मुझे भी नवजीवन मिल रहा है। साहब! एक ही चीज़ से दुनिया ऊब जाती है। लेकिन हरिनाम से कोई ऊबा नहीं; हरिनाम सुनने से कोई ऊबा नहीं; हरिकथा गायन से कोई ऊबा नहीं।

राम को स्मरना वो सत्य है। राम को गाना वो प्रेम है। और निरंतर राम को सुनना ये करुणा है। और आखिर में कहते हैं, 'संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।' और किन-किन लोगों ने राम को गाया; राम को सुना; राम को पुकारा; राम का स्मरण किया; वो कैसे कि अधम धन्य हो गये! अधमों का लिस्ट तुलसी देते हैं। राम का भजन करने से किसको गति नहीं मिली? हे मन, तू राम भज। तो किसी ने। तुलसी से पूछा कि राम भजने से सब को गति मिली तो कोई प्रमाण? बोले, हां, सुनो। गणिका; एक गणिका को। गणिका से शुरू हुआ। अधम से अधम का नाम पहले लिया क्योंकि तुलसी अधमों के पक्ष में खड़ा है। पुण्यात्माओं के पक्ष में तो पूरी दुनिया रहती है यारों! जो गिरे हैं उसके पक्ष में खड़े रहे उसका नाम साधु है। पहले गणिका का नाम।

'गनिका अजामिल।' मैंने उद्घोषणा की है कि साहब! अठारह के दिसंबर में 'मानस-गणिका' पर कथा अयोध्या में करूंगा। क्योंकि तुलसी की शरणागत हुई एक वासंती नामक गणिका तुलसी के मुख से अंतिम अयोध्या में 'रामचंद्र कृपालु भजमन' सुनकर परमपद पा गई। कौन कहता है कि अधम को गति न मिले! राम भजो। अजामिल, गीध, कितने-कितने पापियों को परमात्मा ने तारा! और तुलसी कहे, मेरे सामने देखो! जिसकी लेशमात्र कृपा हो गई तो मेरे जैसा मतिमंद आज 'पायो परमविश्राम।' परमविश्राम का अनुभव कर रहा हूं।

तो चारों परमाचार्यों ने अपनी-अपनी विद्या से अपने-अपने घाट से कथा का गायन किया। इन चारों परम आचार्यों की आशीर्वादक छाया में और माँ विंध्यवासिनी की गोद में बेठकर, माँ गंगा के तट पर बैठ कर, यहां के सभी पंडित, पुरोहित, साधक, सिद्ध सभी महापुरुषों के आशीर्वाद से, यहां के जन-जन की शुभ भावना से माँ की गोद में नौ दिवस के लिए ये मेरी व्यासपीठ मुखर हुई थी। और मैं भी अपने शब्दों को विराम की ओर ले जाऊं।

आज मैं एक मंत्र लिखकर लाया हूं 'सौंदर्यदहरी' का। जगद्गुरु शंकर। मैं एक बात आपको कहूं, ये 'सौंदर्यदहरी' ये जयदेवकृत कुछ बातें 'भागवत' का 'गोपीगीत' आदि-आदि कोई पहुंचे हुए महात्माओं से ही सुनना। वरना गड़बड़ हो जाएगी! 'बिनु गुरु होहिं कि ज्ञान।' एतबार में तभी आयेगी ये बात जब कोई बुद्धपुरुष से सुनी जाये। बाकी तो अलमारी में रहेगी। और भक्ति के उत्पन्न होने के तीन स्थान हैं। एक गुरु; एक खुद का भरोसा और तीसरा, संत की कृपा। भक्ति के कई उद्गम स्थान हो सकते हैं। लेकिन तीन प्रकार से भक्ति मिलती है। एक, 'बिनु बिस्वास भगति नहिं होई।' जिसको भरोसा नहीं वो भजन नहीं कर सकता। मेरी तो एक छोटी-सी व्याख्या है, भरोसा ही भजन है। बिस्वास के बिना भक्ति नहीं मिलती। दूसरा, विश्वनाथ की कृपा के बिना भक्ति नहीं मिलती। 'संकर भजन बिना नर भगति न पावहिं मोरि।' और तीसरा अपने कोई बुद्धपुरुष, अपने कोई संत की कृपा। या कोई रमता राम संत अनुकूल हो जाये तो मिल जाती है। या तो काशी का सम्राट बाबा विश्वनाथ। भोले महाराज की कृपा हो तो ही मिलती है। इसको कहते हैं जी. एस. टी.। जी मानी गुरु। इससे भक्ति मिलती है। एस. मानी साधु-संत। टी. मानी त्रिभुवन गुरु महादेव; विश्वास भी वो मिलती है। 'भवानीशंकरौ वंदे।' जी. एस. टी. कबूल करो। ये आध्यात्मिक जी. एस. टी. है।

तो बाप! माँ के दरबार में आना हुआ इस बहाने। बहुत आनंद हुआ। तो 'सौंदर्यदहरी' का एक मंत्र लेकर आया हूं। ये सब बोलिये फिर नौ दिवसीय कथा को आज विराम की ओर ले चलें। जगद्गुरु शंकर-

जयो जभ्यः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गतिः प्रादक्षिण्य-क्रमण-मशनाद्या हुति-विधिः।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पण-दशा
सपर्या पर्याय-स्तवभवतु यन्मे विलसितम्।।

इसका अर्थ ये है कि हे माँ, मैं जो भी बोल गया हूं उसको जप समझ लेना। मेरे जल्प को जप समझ लेना। एक वाद का नाम है जल्पवाद; वितंडावाद। इसमें माँ, मैं थोड़ा बक-बक कर गया हूं। शंकराचार्य का आश्रय लेकर मोरारिबापू कह रहा है कि माँ, नौ दिन में तूझे समझा न समझा! कहीं कोई त्रुटि-क्षति रह गई हो कहीं कोई

'रुद्राष्टक' करुणा से प्रगट हुआ स्तोत्र है। एक चीख उठी, 'नहीं महादेव, इन पर रोष न कीजिए। ये मेरा आश्रित है। उसने थोड़ा गुरु अपमान कर दिया। लेकिन हे त्रिभुवन गुरु, तू करुणा कर।' मेरी समझ में 'रुद्राष्टक' करुणा से प्रगटी हुई स्तुति है। अत्रि-स्तुति ये प्रेम से प्रगट हुई स्तुति है। लेकिन रामराज्य के अवसर पर महादेव कैलास से जिस रूप में आये वो सत्य से प्रगट हुई स्तुति है। 'जय राम रमारमनं समनं।' ये बिलकुल शुद्ध सत्य से निकली स्तुति है। अत्रि-स्तुति शुद्ध प्रेम से निकली। और भुशुंडि के गुरु के मुंह से निकली ये करुणा से निकली। इसलिए सत्य, प्रेम, करूणा से तीनों स्तुति निकली है।

बचपना हो गया हो तो हे माँ, मेरे जल्प को तू जप समझ लेना कि मोरारिबापू मेरे नाम का जप कर रहा है। आप सब अपनी ओर से कहिये; शंकराचार्य ने कहा। शंकराचार्य हमारा बाप है। बाप की विरासत जितनी मिले, बच्चों को मिलनी चाहिए। मैं जो जल्प कर गया, बकवास कर गया, बक-बक कर गया। तो मैं जो बोल गया हे माँ, उसको जप समझ लेना।

'शिल्पं सकलमपि मुद्रा विरचना।' जैसे एक शिल्प बनाओ। ऐसे मंदिर हैं जहां शृंगार की प्रतीक मुद्राओं का आलेख हुआ है। हे माँ, शायद मैंने कुछ ऐसा चित्र प्रस्तुत कर दिया हो; मैंने बोलते-बोलते, बकवास करते-करते ऐसा शिल्प रख दिया हो, कोई ऐसी मूर्ति बना दी हो; हे माँ, तेरी मुद्रा समझ लेना। मुझे माफ़ कर देना। कहीं कोई सुरुचि भंग हो गया हो; हो सकता है। वक्ता को बहुत ध्यान रखना पड़ता है। लेकिन कभी हो भी जाये। तो हे माँ, उसको मुद्रा समझ लेना। क्या सरलता से एक बालवत् शंकराचार्य 'सौंदर्यलहरी' में कहते हैं!

'गतिः प्रादिक्षण्य।' माँ, इन दिनों मैं जहां-जहां चला। इधर गया, उधर गया। गंगा के तट पर गया; कथा सुनने गया। माँ के दर्शन को गया। किसी की कुटिया में भिक्षा लेने को गया। हे माँ, उसको मेरी प्रदक्षिणा समझ लेना। क्या अद्‌भुत बातें लिखी हैं! मैं कहीं भी गया तो हे माँ, उसको तू बेकार मत समझना। तू तो उदार दिल है। उसको तू प्रदक्षिणा समझ लेना।

'क्रमण मशनाद्या हुति।' माँ, मुझे भूख लगे तो फिर मैं मशन करता हूं, भोजन करता हूं। तो हे माँ, कभी-कभी ज्यादा खा लेता हूं। तो उसको खाना मत समझना; 'आहुति विधि।' मैं यज्ञ में आहुति दे रहा। 'प्रणामः संवेशः सुखमाखिलमात्यार्पण दशा।' माँ, मैं थक जाऊं और रात्रि को अपनी बेड पर ज़मीन पर जहां भी सो जाऊं, साष्टांग प्रणाम समझना। लोग कहते हैं, तीर्थों में जागना चाहिए; जप करना चाहिए। हमें नहीं हुआ; माँ, थक गये थे तो सो गये! तो माँ, उसको तेरे लेटे हुए बेटे को तू दंडवत् प्रणाम समझना। ये आत्मसमर्पण की दशा। मैं सब कुछ भूल कर लेट गया; ये प्रणाम समझना।

सपर्या पर्याय-स्तवभवतु यन्मे विलसितम्।

हे माँ, मैंने ऐसा-ऐसा जो कुछ मेरे रस के लिए भी किया हो। इसका अर्थ मैं बहुत स्पष्ट न करूं। इतना ही रखो कि मैं तो संसारी हूं, मैंने कुछ रस के लिए किया हो; कोई चीज़ के प्रति मैं आकृष्ट हो गया होऊं; ये सब जो मैंने किया हो तो हे माँ-

पूजा ते विषयोपभोग-रचना निद्रा समाधि-स्थितिः।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।।

शिव-शिवा एक साथ जा रहे हैं। एक ही साथ दोनों की बातें हो रही हैं क्योंकि अर्धनारेश्वर हैं। मैंने कुछ खा लिया, मैंने कुछ भोग भोगना चाहा। हे माँ, माफ़ करना। ये भी तेरी पूजा समझ लेना। ये भी तेरी बंदगी समझ लेना। तो 'भवतु यन्मे विलसितं।' हे माँ, ये सब तेरे चरण में मेरी हर एक प्रक्रिया।

तो हे 'मानस' मैया, मैंने जो कुछ यहां गाया विंध्यवासिनी माँ के सन्मुख; इसमें त्रुटि रह गई हो। हे माँ, मैं तेरे चरण में रख देता हूं। मैं इतना ही कहूं, बहुत प्रसन्नता के साथ ये कथा विराम ले रही है। मैं सब के प्रति प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। नवरात्रि पूरी हो रही है। दशहरा की एडवांस में बधाई। और शरद पूर्णिमा-वाल्मीकि जयंती है। आदि कवि वाल्मीकि शरद पूर्णिमा उसकी जयंती मानी जाती है। जैसे गुरु पूर्णिमा व्यास पूर्णिमा मानी जाती है। तो शरद पूर्णिमा की भी एडवांस में बधाई देती हुई मेरी व्यासपीठ विदाय लेना चाहती है। कोई भी अनुष्ठान होता है, चाहो न चाहो, सकाम या निष्काम भाव से कुछ भी हो, उसका एक सुकृत बिल्ड होता है। मैंने तो इस कथा से कहना शुरू कर दिया, स्वान्तः सुखाय की अब कोई बात रही नहीं। न 'मोरे मन प्रबोध जेहि होई।' कोई बात नहीं। वाणी पवित्र करना बहुत कर लिया। अब तो केवल 'हेतु रहित अनुराग राम पद।' यह विनती रघुबीर गोसाईं। तेरे चरणों में हमारा अनुराग किसी भी हेतु के बिना हो। 'यह बिनती रघुबीर गोसाई।' तो आओ, हम सब मिलकर के इस नौ दिवसीय रामकथा 'मानस-श्री देवी' का सुकृत फल माँ विंध्यावासिनी के चरणों में समर्पित कर दें, माँ, ये तू ले ले; ये तेरे चरणों में हमारे 'हेतु रहित अनुराग रामपद।' तो माँ को ये कथा समर्पित।

मानस-मुशायरा

मैं क्षिप्रा सा सरल तरल बहता हूं।
मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूं।
मुझ को तो मौत भी मार नहीं सकती,
मैं महाकाल की नगरी में रहता हूं।
– शिवमंगल सिंह 'सुमन'

मैं खुद को कहीं बांट न डालूं दामन दामन।
कर दिया तूने अगर मेरे हवाले मुझको।
– कतील शिफ़ाई

मज़ाक ज़िंदगी में हो ये तो कोई बात है।
मज़ाक जिंदगी से हो ये दिल को नापसंद है।
–मजबूर साहब

तुम मुझे भूल भी जाओ तो ये हक़ है तुमको।
मेरी बात ओर है मैंने तो महोब्बत की है।
– साहिर लुधियानवी

मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूं।
वो गज़ल आपको सुनाता हूं।
– दुष्यन्त कुमार

मेरे जनाज़े पर लिख देना यारों,
महोब्बत करनेवाला जा रहा है।
– राहत इंदौरी

कवचिदन्यतोऽपि

कवि के सात सोपान होते हैं; कवि की भी सप्तपदी है

'काग अवोर्ड' अर्पण समारोह पर मोरारि बापू का प्रासंगिक उद्‌बोधन।

आज काग के आंगन में इस काग-मंच से जिनकी हम सब ने वंदना की ऐसे राजस्थान से पधारें हुए बुज़ुर्ग, अनुभवी, सम्मानित दादाजी, आपको मेरा प्रणाम। दिवंगत दानबापू, जिनके साथ मुझे बैठने और उनकी बात सुनने का सौभाग्य मिला था, ऐसे दिवंगत बापू, उनके प्रतिनिधि के रूप में पधारे उनके पुत्र को भी बहुत-बहुत साधुवाद। रतिदादा; आप सब में से लोकसाहित्य के बारे में सबसे पहले किसी को सुना हो तो यह रतिदादा है। हम छोटे थे; तलगाजरडा अप-डाउन करते हुए मैं मेट्रिक पास करने की कोशिश करता था और रतिदादा हमारे दुलादादा राज्यगुरु के अतिथि हुआ करते थे। चाचा की उनके साथ बैठक; दो-तीन दिन रहते थे; हम उनको सुनने के लिए जाते। अथवा बढ़ई के घर सुनने जाते, या चाय-पानी पीने के लिए मेरे घर आते थे तब सुनते थे। रतिदादा भगतबापू की 'शंकरस्तुति' हमें सुनाते; उनके दोहे सुनाते और 'रामचरितमानस' से गोस्वामीजी ने 'किष्किन्धाकांड' में वर्षाऋतु का जो वर्णन किया है उसे भगतबापू की शैली में सुनाते रहते थे। समिति ने बहुत बड़ा काम किया कि हमने उनको याद कर वंदना की। हमारे अनुदानभाई; उनका एक बहुत मधुर वाक्य है, बापू, अगर हम ऐसा कुछ सुनते हैं तो बहुत कुछ उघाड होता है। उघाड के लिए प्रवृत्त यह युवक, उघाड के लिए तरस रहा एक युवान हमारे बीच एक सर्जक के रूप में है। एक ऊंचाई पर पहुंचा वक्तव्य कैसा हो! अभी गढ़वी साहब ने कहा ऐसी उनकी जबरदस्त प्रतिभा।

मैं तो ये सभी को सुनूं तब मुझे ऐसा होता है; हम युद्ध के आदमी नहीं हैं, हिंसा के आदमी नहीं हैं, शस्त्र के आदमी नहीं है; यह मुझे पसंद ही नहीं है, लेकिन शायद कहीं लड़ना होता तो ऐसे दस-बारह लोगों को हथियार के बिना भेजें तो सामनेवाले ऐसे ही भाग जाते! उनका जो अहिंसक वीररस है। यह मेरा अतिशयोक्ति अलंकार नहीं है। क्योंकि मैं कोई अलंकार का आदमी नहीं हूं। मैं तो श्रोता हूं। वीररस अहिंसक है। और वीररस मनुष्य में आह्लाद उत्पन्न कर सकता है; वीररस मनुष्य में आनंद उत्पन्न कर सकता है; वीररस इसके समापन में आंसू भी बहा सकता है। ऐसा वीररस जो ये नौ चेतनाएँ द्वारा प्रकट हो रहा हैं, वह हमारे अनुदानभाई; मुझे तो बहुत देर से परिचय हुआ! वह अपने स्वभाव के संकोच के कारण बैठ जाते लेकिन पता भी न चला! एक बार राजकोट में परिचय हुआ और उनसे मिलना होता रहा।

बाप! माताजी की बहुत कृपा है। और राजभा; वह भी एक ऐसे ही सर्जक; ऐसी ही उनकी प्रस्तुति। वह अकेला ही काफ़ी है। चयन समिति द्वारा जो चयन किया गया है। अब हमारे पास जो टीम है इससे समिति को चयन करना मुश्किल होगा कि किसको पसंद करें? मुझे लगता है कि एक साथ सभी को पुरस्कृत कर लें, जैसे सौराष्ट्र युनिवर्सिटी ने एक साथ दस लोगों को 'मेघाणी पुरस्कार' दिया। ये सब जो ऐसा साहित्य लेकर आए हैं। मेरे हर्ष की तो कोई सीमा नहीं है साहब! कभी-कभी यह लोकसाहित्य मेरी व्यासपीठ पर भी रंगोली कर देता है। मैं निमंत्रण देता हूं, आओ बाप! फिर आ कर समयोचित प्रस्तुति करते रहते हैं। इसकी मुझे बहुत खुशी है। पूरी दुनिया आपसे खुश होती है। जो खुश नहीं होता है तो उसे तो कोई भी खुश नहीं कर सकता! लेकिन इतने दावे के साथ यह बावा कहेगा कि मैं बहुत ही खूश हूं साहब! मुझे लोकसाहित्य का इतना गौरव है कि साहब, दुनिया की महासत्ता को लोकसाहित्य से हाथ मिलाना पड़ा! संदर्भ समझ लेना। रचना कैसे भी हुई हो, लेकिन विश्व महासत्ता को मेरे देश के लोकसाहित्य से हस्तधूनन करना पड़ा! उसकी यात्रा की यह सफ़लता है। बाकी तो वह जो कर गया, जो हुआ, मेरा नाथ जाने! लेकिन यह लोकसाहित्य की ताकत है। यह गंभीरता है।

बिना अधिकार एक चेष्टा करूं? अगर डायरा कहता है तो? क्या आपको नहीं लगता कि अगले साल कागबापू का अवोर्ड यह बळुबापा को दिया जाना चाहिए? अब एक नियम है कि जो लोग समिति में हैं उन्हें पुरस्कार नहीं मिलता है। अगले साल उनको समिति में नहीं रखेंगे। हम ऊपर से उनका मार्गदर्शन लेगें। कल इस ब्राह्मण पुरस्कृत होना चाहिए। उन्हों ने इस मंच को कई वर्ष दिए हैं। समिति मुझे माफ़ करे लेकिन अगले साल इस ब्राह्मण की आरती उतरनी चाहिए। महेशदान बापू, सही है न? जय माताजी! अब पक्का हो गया! शेष चार का निर्णय समिति करेगी। कभी तो मैं सोगठ खेलूं न!

बाप! एक नया रिवाज़ शुरू हुआ कि एक नई चेतना को पुरस्कृत की जानी चाहिए। इसमें सबसे छोटा राजभा है; उसके गले में थोड़े दिनों से तकलीफ़ हुई। एक महीने का मौन रखना पड़ा था। उनकी माँ को चिंता हो; पिताजी को भी चिंता हो; जगदंबा को सब से ज्यादा चिंता हो। उनकी तुलना में मैं नहीं आऊंगा, लेकिन तलगाजरडा को भी बहुत चिंता होती है बाप! पर जब राज बोला, तो सवाया बोला!

यहां जो कविता में वंदना हुई इस कविता में पीराई है। राजस्थान से आता है; पीराई है; जिसमें पीर की खुश्बू आती है। मैं ग्रंथ नहीं पढ़ सका, यथावकाश मैं देखूंगा। लेकिन राजस्थान से उनमें पीर की खुश्बू आती है। दानभाई के लड़के की कविता में वीरडा के पानी की खलखल आवाज़ आती है। एक नीर वीरडा से आता है। हमारा अनुदानभाई; उनकी कविता में हीर छिपा है। राज की कविता में गीर दिखाई देता है। पूरा गीर उतरता है और वह सब जो एक जगह इकठ्ठा हुआ हो; एक ब्राह्मण देवता; मुझे आनंद हुआ कि जब मैंने उसे फ़ोन किया तो कोई हर्ष-शोक नहीं था।

जब इस तरह की कविता को सम्मानित किया गया है, तो नहीं लगता कि काग ऋषि की चेतना कितनी खुश हुई होगी! उसे ऐसा नहीं लग रहा होगा कि मेरे घोंसले में कितने अंड़े सीए गए हैं!

पोटा सौ पोता तणां पाळे पंखीडां,
बचलां बीजानां को'क ज सेवे कागडा।

ऐसी नई चेतनाएं काग बापू के घोंसले में आती है उसका आनंद है। तो कवि के सात सोपान होते हैं; कवि की भी एक सप्तपदी है। जब मेरे देश की भाषा का सर्जक शुरूआत करता है तब, 'बालकाण्ड' में हो, तब उसकी कविता किशोरी जैसी होती है।

चरनन की रज पाउं किशोरी तेरे,
दास किशोरी के चरनन परी
बिमल बिमल जस गाउं।

पैरों में पायल; हाथों में कंगन और कमर में धनी खनकती हो। तीनों आभूषण निर्दोष हैं। पहला कदम उठानेवाले मेरी भाषा के कवि में मासूमियत होती है। लेकिन जब वही कवि एक और कदम आगे बढ़ाता है, तो उसकी कविता दुल्हन जैसी बज जाती है; रघुकुल का शृंगार बन जाता है। और जब वही कवि तीसरा कदम उठाता है और 'अरण्यकांड' में प्रवेश करता है, तो उस कविता में शोक की भावना पैदा होती है; सिसकता है; आंखों में आंसू छलक

उठते हैं। और जब वही कवि नित्य नूतन कदम उठाता है और चौथे चरण में 'किष्किन्धा' में प्रवेश करता है, तब उसकी कविता एक खोज़ का विषय बन जाती है, जैसे कि 'किष्किन्धा' की जानकी एक खोज़ का विषय बन गई। कहां है सीता? इसके उपर पीएच.डी. करना होगा; शोध प्रबंध लिखा जाएगा जब वह 'किष्किन्धा' में प्रवेश करेगा। जब वही कविता 'सुन्दरकांड' के पांचवें चरण पर चलती है, तो कविता एक तपस्विनी बन जाती है-

कृस तनु सीस जटा एक बेनी।
जयति हृदय रघुपति गुन श्रेनी।।

कविता जब 'सुन्दरकांड' में प्रवेश करती है, तो उसमें तपस्या उत्पन्न होती है। जब रामभाई काग आते तब कहते, कई कवि मेरे पास आते और जब वे बोले तो उनकी कविता में उनके होंठ नहीं बोलते, उनकी तपस्या बोलती है। और फिर जब वह 'लंकाकांड' में प्रवेश करता है, जब वह वीररस में प्रवेश करता है, तो उसकी कविता एक स्वर्णिम रूप धारण करती है। 'कनक पंकज की कली'। 'लंकाकांड' में जानकी अग्नि परीक्षा से बाहर निकलती है तब ऐसा कहते हैं कि मानो स्वर्ण की कली खिली हो! पूरी कविता स्वर्णिम। जिस देश की युद्ध प्रणाली कविता को स्वर्णिम बना देती है, वह युद्ध कितना अहिंसक होगा? वह युद्ध सामनेवाले पर कितना करुणा करता होगा? वह कारुणिक कविता फिर एक स्वर्णिम रूप धारण करती है। और वही कविता जब उत्तरावस्था में प्रवेश करती है; जब वह 'उत्तरकांड' में प्रवेश करती है, तो वह महारानी का रूप धारण कर लेती है।

थाशे रामजी राजा ने अमारी महाराणी सीता।

किशोरी से लेकर महाराणी का पद शोभायमान करती हमारी कविता की जो रेन्ज है; कविवर रवीन्द्रनाथ टागोर से लेकर कहां-कहां तक! पाश्चात्य विद्वानों का हमें पता नहीं। और वहां जाने की आवश्यकता भी नहीं। यहां कम कहां है? वहां भी है; बहुत अच्छे-अच्छे है। लेकिन हम इसके बारे में ज्यादा नहीं जानते। लेकिन हमारे कवियों की रेन्ज किशोरी से लेकर महारानी तक हैं। ऐसी कविता की शुरूआत हमारे इस भू-भाग में हुई थी और इसका गणेश-स्थापन काग बापू ने किया था और फिर जो आगे चला! इस तरह जीने जैसा समय आया है। यह भीतर से जलने का समय नहीं है। यदि जीना आता हो तो भीतर से उनका अभिवादन करना उनकी पीठ पर हाथ पसार कर। जैसे कानजी भुट्टा साल-साल की अपनी आयु दे देते थे, वैसे उसके लिए आयु देने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि हमारी आयु ज्यादा देने जैसी नहीं है! इसलिए ऐसी उदारता भी न

दिखाएं। लेकिन अगर हम पीठ थपथपाएंगे और अधिक से अधिक हर्ष व्यक्त करेंगे तो हमारी भाषा, हमारा लोकसाहित्य एक नया दिवाकर बन जाएगा; ऐसा साहित्य है। और लोकसाहित्य के जो आदी हो गए हैं; यह छेलभाई और मैं! यह छेलभाई सुनने में सिनियर है। श्रोता के रूप में पुरस्कार मिले तो उन्हें ही मिलना चाहिए। और अगर मुझे मिल गया, तो मैं उसे दे दूं और उनके पास दो हो जाय!

मंच पर आना ही चाहिए और मंच पर आने के लिए सभी शर्तों का पालन करना चाहिए। क्योंकि हम सुनते हैं! आप कान में जो डालते हैं वह हमारे पेट में उतरता है! पेट सड न जाय इसलिए कहता हूं!

तेरी चोखट पे मर गया जो,
उसको जन्नत की हवा रास नहीं आती।

लोकसाहित्य की शरण में जो गये हैं और घायल हुए हैं उन्हें फिर कहीं भी अच्छा नहीं लगता। हमारे उपेन्द्र त्रिवेदी कविता नहीं लिखते?

अहंगरो लाग्यो....

तो हमें इस आदत पड़ गई है। मुझे चाय पसंद है, तो मुझे चाय पिलानेवाले कितने लोग हैं? सिर्फ़ सुनना ही नहीं; इसे पचाना भी है। इतना ही नहीं, व्यासपीठ से उनका नाम लेकर कहना है; तब जिम्मेदारी समझें।

जिस समय में रमेश पारेख ऐसा कहते हैं कि यहां पयगंबर की ज़बान भी दो-दो पैसे में बिकती है! सब कुछ बिकने चला है ऐसे समय में यह मंच कितना समृद्ध होता जा रहा है! एक-एक व्यक्ति काफ़ी है चार घंटें का कार्यक्रम करने के लिए। ऐसे सभी हैं और जो नौ रसों का आस्वादन करा सके ऐसे लोकसाहित्य के उपासक हैं। सचमुच अपार खुशी होती है।

हरेशदानभाई ने बात की कि भगवान शंकर ने ज़हर पी लिया और उमा ने देखा कि मेरे पति ज़हर पी रहे हैं। और किसी भी पत्नी को चिंता तो होती है! बिना किसी कारण ये सभी ज़हर पिलाने आएं हैं और यह भोला पी जाएगा! उसे चिंता हुई इसलिए उसने कहा कि मत पीजिए। तब शिवजी ने कहा कि देवी, पीना तो पड़ेगा। देवी ने कहा कि अगर मैं तुम्हारी अर्धांगिनी हूं, तो आधा-आधा पी लें। मैं अमृत की पूरी कथा सुनूं और ज़हर पीने से भाग जाऊं तो हिमालय लज़्ज़ित होगा! मेरा हिमालय नीचे गिर जाएगा! मैं हिमालय की बेटी हूं। मैं बर्फ़ की, पहाड़ की कविता हूं। जानकी पृथ्वी की कविता है। द्रौपदी अग्नि की कविता है। ये सब कविताएं हैं; ये सभी माताएं हैं। कविताओं ने विभिन्न विग्रह धारण किये है। पार्वती कहती हैं, मुझे आधा हिस्सा लेना चाहिए। तब महादेव कहते हैं, नहीं, नहीं; मैं ही पीता हूं। फिर स्वामी का स्वामी तो कौन है? महादेव ने पी लिया। लेकिन गांव का घर के खपड़े ठीक करनेवाला गरीब आदमी नीचे उतरते समय एक तरफ़ से चूक जाता है और अगर वह नीचे गिर जाता है, तो उसकी पत्नी पोंछने लगती हैं; खून पोंछती है; साड़ी फ़ाड़कर बांध देती है। पत्नी ऐसा करती है। जब महादेव ने ज़हर पी लिया, तो पार्वती ने कहा कि यदि आप मुझे आधा नहीं देते हैं तो कुछ नहीं, लेकिन मुझे आपकी गर्दन पर हाथ फ़ेरने दो! और जिस दिन देवी ने अपना हाथ लगाया तब पीया शिव ने, पचाया भवानी ने! तुम उनके ऐसे संतान हो! हम उनके संतान हैं।

इस मंच को ओर समृद्ध करें। और मैं किसी के दोष देखने के लिए अभ्यस्त नहीं हूं और मुझे देखना भी नहीं है। हमारे राजेन्द्रदास बापू कथा करते हैं वह मुझ से मिलने आए। रामपुर के डायरा ने उनसे कहा कि बापू बार-बार आते हैं, और आपसे मिलने आनेवाले हैं तो आप गांजा पीना छोड़ दीजिए। यह हमारी ताजी बात है। उस बावाजी ने छोड़

दिया! इसमें मुझे क्या कहना? मैंने कहा, बापू, मैं आपका गांजा नहीं देखता, मैं आपका गजा (क्षमता) देखता हूं। मुझे गांजा के साथ क्या लेना-देना? पीने के बाद आप बीमार हो सकते हैं! आप जाने! मेरे लिए तो साधु का कद क्या है; कवि की क्षमता कितनी है, इससे मुझे संबंध है। बाकी मंच को संवारना यह इतनी ही हमारी जिम्मेदारी है। हमें ऐसी आदत हो गई है। मोरारि बापू को आदत होने पर तो आपको बहुत सावधान रहना पड़ता है बाप! क्योंकि यह बावा अभ्यस्त हो चुका है! अब ज़न्नत की हवा रास नहीं आ रही है, क्या करें साहब?

मैं बहुत खुश होता हूं। खुश होता हूं उससे ज्यादा भी आप मुझे बहुत पसंद हो। मुझे यह बहुत पसंद है साहब! किसी भी देश में ऐसी कोई बात नहीं है। पांच कवि बैठे हो और जिसकी बारी आती है वही बोलता है, शेष चार चले जाते हैं! मैंने ऐसा मंच भी शेर किया है! इसके बजाय, जब एक मंच पर दस लोकसाहित्यकार उत्कटता से प्रस्तुति कर रहे हो तब ऐसा लगे कि ये लोग क्या कर सकते हैं? हमारे पास ऐसी लोकविद्या हैं। ऐसी लोकविद्या में भी इन पगड़ियों ने हमें सम्मान दिया है। राजभा ने पगड़ी पर इतना सुन्दर गीत लिखा है कि पगड़ीवाला पाघड़ी जीया। श्लेष किया न? किन्तु अब घड़ी उनके नाम! ऐसी पगड़ियां चुन-चुन कर इन लड़कों ने उनकी आरती उतार दी है साहब! अभी एक और कविता सुनाई गई है कि पाळिया ने कहा कि मुझे पत्थर मत कहना। मुझे पत्थर मान कर सड़क पर फ़ेंक दोगे, फिर मेरे टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे; कहीं मेरा उपयोग देशद्रोह में न हो; ऐसे मुझे नीव में रखो लेकिन मुझे पत्थर मत कहना। मैं इस देश का स्मारक हूं; मैं इस देश का खमीर हूं; मैं इस देश की अस्मिता हूं। बहुत बड़ी जिम्मेदारी है इस मंच पर। और हम इतना ऊंचा सुनने के आदी हैं कि कोई ओर रास नहीं आएगा। तुम हमारी तृषा बुझाते हो।

काग के आंगन में ऐसा कुछ हो रहा है, जिसमें केवल माँ जगदंबा की कृपा और काग की चेतना काम कर रही है। प्रवाह तो आता ही रहता है। बीच में हम आ जाते हैं। लोग कहते हैं, निमित्त बन गये। लेकिन हम न होते तो कोई ओर आ जाते। ऐसा अद्‌भुत प्रवाह एक गूंगे आदमी के आंगन में मुखर हुआ है। बाबूभाई में तो मुझे अभी भी नहीं पता कि उनको क्या पसंद है? क्या नापसंद है?

एक बार फिर मैं बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। मैं आप सभी को नमन करता हूं। दादाजी, आप बहुत दूर से पधारे। यह तो समय की सीमा है जिससे रुकना पड़ा। कितना इतिहास और सब कुछ लेकर बैठे हैं! इस मंच से दिए गए सभी वक्तव्यों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अभ्यासपूर्ण प्रवचन यहां हुए; खूबसूरत प्रयोग यहां हुए। काग-चौथ की प्रतीक्षा करें।

अंत में मेरा विनम्र निवेदन है कि लोकसाहित्य के उपासक व्यस्त होते हैं ये मैं जानता हूं; फिर भी इस दिन को अपनी डायरी में खाली रखेंगे तो जगदंबा का आशीर्वाद उन पर बरसता रहेगा। यहां सब आते रहे। और कुछ नहीं, हम इसे देखकर खुश होते रहते हैं। मैं तुम्हारे सामने नाचूं, यह अच्छा नहीं लगता वरना मुझे ऐसे नाचने का मन करता है! ऐसा भी होता है कि यहां एक गरबा करूं! यह सचमुच ऐसा होता है। आपको सिर्फ़ कहने के लिए नहीं कहता। अब मुझे नहीं पता कि कब व्यासपीठ से नीचे उतरकर नाचने लगूं! सही में ऐसी भनक हो रही है। कानजी बापा के वहां जब हम मेहमान बने तो कानजी बापा ने कहा, मैं अभी आ रहा हूं। मुझे लगा, चाय-पानी का बोलने गये होंगे। थोड़ी देर बाद आवाज़ आई! कानजी बापा पगड़ी उतारकर अकेले-अकेले ही रास ले रहे थे!

मुझे अभी-अभी लोग पचहत्तर साल की याद दिलाते रहते हैं! मेरे पचहत्तर साल तब पूरे होंगे जब मुझे पांच सवालों के उत्तर मिलेंगे। पचहत्तर तब समझूंगा जब मेरे मन के पांच सवाल हल होंगे। अभी तो उत्तर मिलने बाकी है। नगीन बापा शतायु है। फिर भी अभी ऐसा ही दिमाग, ऐसी ही कलम, ऐसे ताजा विचार। 'तड ने फड', 'सोंसरी वात', यह सब ऐसे ही चल रहा है। उम्र का इससे कोई लेना-देना नहीं है। समय उस पर लागू नहीं होता है जिसके पास कोई ईश्वर प्रदत्त कला है। कला ये काल पर विजेता होती है। ऐसी कला जो जगदंबा ने मेरे इस समाज को दी है। समाज भूखा है। और यह आपके द्वारा परोसा जाय और समाज में सभी रस परोसा जाय। शांत रस में 'एकान्ते सुखमास्यताम्।' ऐसी स्थिति पर हम पहुंच पाये, ऐसी जगदंबा के चरणों में प्रार्थना करके मैं अपनी बहुत ही प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। साहब! अंत में तो हमें शांतरस में प्रवेश करना होता है। और विनोबाजी को जब किसी ने पूछा कि शांति की मूर्ति बनानी हो तो कैसे बन सके? यदि आप शांति का चित्र बनाना चाहते हैं तो कैसे बनाया जा सकता है? विनोबाजी पांच मिनट तक चुप रहें; फिर कहा, तुम्हारे आंगन में तुम्हारी माँ बैठी हो, वही शांति की मूर्ति है!

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

('काग अवोर्ड' अर्पण समारोह में कागधाम-मजादर (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्यः दिनांक .२७-२-२०२०)

॥ जय सीयाराम ॥